मूल्य: ₹50 मई–जून 2026 आई. एस. ओ. 9001: 2015 संगठन

वैज्ञानिक बागवानी की लोकप्रिय पत्रिका

फल फूल

भाकृअनुप ICAR

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ

इस अंक में

- देसी फलों का महत्व एवं संरक्षण
- हरी पत्तेदार सब्जियों के फायदे अनेक
- पर्वतीय क्षेत्रों में टमाटर उत्पादन
- पुष्पोत्पादन पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

/InAgrisearch | /user/icarindia | officialicarindia | www.icar.org.in | /icarindia

वर्ष 2025–26 में बागवानी फसलों की जारी नई किस्में

सेब – सीआईटीएच–अम्मोल

अखरोट – सीआईटीएच – अर्ली

नारियल – कल्प नक्षत्र

सुपारी – तराई शंकर

प्याज – सीआईटीएच – रेड जेम

आलू – कुफरी रतन

आलू – कुफरी तेजस

आलू – चिपभारत –1

लहसुन–सीआईटीएच–जम्बो

ब्राह्मी – वल्लभ गंगा ब्राह्मी

चिकोड़ा – वल्लभ चिकोड़ा –1

सालपर्णी– वल्लभ सालपर्णी–1

मशरूम– डीएमआर मिल्की–321

इलायची– आईआईएसआर – सुज्योति

आम–अवध अभया

आम–अवध समृद्ध

अमरूद–अवध भूषण

बेल – अवध अर्पण

बेल – अवध श्रेष्ठा

जामुन – अवध जामवंत

(स्रोत: भाकृअनुप वार्षिक रिपोर्ट 2025–26)

भाकृअनुप
ICAR

फल फूल

वैज्ञानिक बागवानी की लोकप्रिय द्विमासिकी

वर्ष: 47, अंक: 3, मई-जून 2026

संपादन सलाहकार समिति

1. **डॉ. संजय कुमार सिंह** — अध्यक्ष
   उप महानिदेशक (बागवानी विज्ञान)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
2. **डॉ. अनुराधा अग्रवाल** — सदस्य
   परियोजना निदेशक (कृज्ञाप्रनि)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
3. **डॉ. राजेश कुमार** — सदस्य
   निदेशक,
   भाकृअनुप-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान,
   वाराणसी, उत्तर प्रदेश
4. **डॉ. बृजेश सिंह** — सदस्य
   निदेशक,
   भाकृअनुप-केंद्रीय आलू अनुसंधान संस्थान,
   शिमला, हिमाचल प्रदेश
5. **डॉ. बिकाश दास** — सदस्य
   निदेशक,
   भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र,
   मुशहरी, मुजफ्फरपुर, बिहार
6. **डॉ. विनय भारद्वाज** — सदस्य
   निदेशक,
   भाकृअनुप-राष्ट्रीय बीज मसाला अनुसंधान केंद्र,
   तबीजी फार्म, ब्यावर रोड, अजमेर, राजस्थान
7. **डॉ. ओम प्रकाश अवस्थी** — सदस्य
   प्रमुख, फल एवं बागवानी प्रौद्योगिकी प्रभाग,
   भाकृअनुप-भाकृअनुसं,
   पूसा, नई दिल्ली
8. **प्रो. राजेश्वर सिंह चंदेल** — सदस्य
   कुलपति,
   डॉ. वाई.एस. परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय,
   नौणी, सोलन, हिमाचल प्रदेश
9. **डॉ. डी. आर. सिंह** — सदस्य
   कुलपति,
   बिहार कृषि विश्वविद्यालय,
   सबौर, भागलपुर, बिहार
10. **श्री हिमांशु मिश्रा** — सदस्य
    कृषि पत्रकार
11. **लेफ्टिनेंट कर्नल सुभाष देसवाल (सेवानिवृत्त)** — सदस्य
    प्रगतिशील किसान
12. **डॉ. अंजनी कुमार झा** — सदस्य
    प्रधान वैज्ञानिक (कृज्ञाप्रनि)
    भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
13. **सुश्री सुनीता अरोड़ा** — सदस्य सचिव
    संपादक, हिंदी संपादकीय एकक (कृज्ञाप्रनि)
    भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

प्रधान संपादक
डा. अनुराधा अग्रवाल

संपादक
सुनीता अरोड़ा

संपादन सहयोग
गजेन्द्र

प्रभारी (उत्पादन एकक)
पुनीत भसीन

प्रभारी (व्यवसाय एकक)
भूपेन्द्र दत्त

दूरभाष: 011-25843657
E-mail: businessuniticar@gmail.com
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12
एक प्रति: रु. 50.00 वार्षिक : रु. 250.00
विशेषांक : रु. 200.00
E-mail : phalphul@gmail.com

विषय सूची

विदेशक की कलम से

पोषण, उत्पादन और प्रौद्योगिकी का संगम: आधुनिक कृषि
– **अनुराधा अग्रवाल**

गुणकारी 4
हरी पत्तेदार सब्जियों के फायदे अनेक
अर्जुन सिंह, रमेश कुमार यादव, सजील अहमद, निरंकार **और** विनय कुमार

अवसर 7
पुष्प उत्पादन में जीनोम संपादन
लशिका मीना, तिलक चंद्र, मीर आसिफ इकबाल, दिनेश कुमार **और** सारिका जयसवाल

रखरखाव 10
सब्जियों की पौधशाला का प्रबंधन
राज कुमार, कनक लता, ए. के. राय, शक्ति खजुरिया **और** अमित कुमार

14
तकनीक
पर्वतीय क्षेत्रों में पॉलीहाउस में टमाटर की खेती
रेनू सनवाल, राहुल देव, एन के हेडाऊ, संथिया एस. **और** अमित कुमार

17
व्यावसायिक
मूल्यवर्धित आंवला का टिकाऊ उत्पादन
शिवम कुमार राजपूत **और** सत्यभान

21
महत्व
मशरूम से भरपूर पोषण
देबजीत शर्मा **और** धर्मेश गुप्ता

24
स्वास्थ्यवर्धक
गुणों से भरपूर माइक्रोग्रीन्स का उत्पादन
स्नेहा राठौर **और** राज नारायण

27
धरोहर
पंचकुट्टा-थार मरुस्थल की पारंपरिक खाद्य प्रणाली
मयंक शर्मा, किरण यादव **और** पियूष चंदेल

29
पोषण
देसी फलों का महत्व एवं संरक्षण
उपेन्द्र यादव, विवेक कुमार त्रिपाठी **और** वेदान्त सिंह

32
मसाला
जीरे की उन्नत बीज उत्पादन तकनीक
जोगेन्द्र सिंह, नेतराम **और** करन सचदेवा

पौष्टिक 34
शुष्क क्षेत्रों हेतु बेहद उपयोगी कैर
प्रकाश सिंगाठिया, निर्मल कुमार मीणा, सुभाष चन्द्र **और** महिमा सनोडिया

विषय सूची

चुनौती 37

पुष्पोत्पादन पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

पुरूषोत्तम कुमार नन्दु, रफीखर एम, रश्मि सी. आर. **और** प्रियाकुमारी आई

41

प्रणाली

स्वस्थ पौध उत्पादन हेतु सनकन नर्सरी

निखिल शर्मा, अजय कुमार जोशी, सविता **और** अंशु कुमार पाण्डेय

44

उपाय

आम में अनियमित फलन की चुनौती का प्रबंधन

संजीव कुमार **और** सी.एस. आजाद

नियंत्रण 46

सब्जियों में जड़गाँठ सूत्रकृमि का प्रबंधन

विकास कुमार आलोरिया, प्रकाश सिंगाठिया, प्रज्ञा उइके, जयंत कुमार महलिक **और** रूपक जैना

49

उपयोगी

सब्जियों की संरक्षित खेती हेतु पॉलीहाउस तकनीक

पुष्पेंद्र प्रताप सिंह, शुभम यादव **और** राजेन्द्र प्रसाद मिश्रा

52

जानकारी

मई-जून माह के बागवानी कार्य

हरे कृष्ण, अरविंद कुमार सिंह, शुभम कुमार तिवारी, अनूप प्रताप सिंह **और** शशि शेखर

आवरण-II

झलकियां

वर्ष 2025-26 में बागवानी फसलों की जारी नई किस्में

आवरण-III

नवाचार

प्लास्टिक मल्च की गर्मी से नन्ही पौध की आसान सुरक्षा

डिस्क्लेमर

लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं। उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुन: प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। रसायनों-कीटनाशकों की डोज संबंधित संस्तुतियों का प्रयोग विशेषज्ञों से परामर्श के बाद करें। समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

निदेशक की कलम से

पोषण, उत्पादन और प्रौद्योगिकी का संगम: आधुनिक कृषि

भारतीय कृषि आज एक महत्वपूर्ण मोड़ पर खड़ी है, जहां परंपरागत ज्ञान और आधुनिक तकनीक का संगम नई संभावनाओं के द्वार खोल रहा है। बदलते जलवायु परिदृश्य, बढ़ती जनसंख्या और पोषण सुरक्षा की चुनौती ने कृषि को केवल उत्पादन तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे गुणवत्ता, स्थिरता और बाजार उन्मुखता की ओर अग्रसर किया है। फल-फूल और सब्जी उत्पादन में हो रहे नवाचार इस परिवर्तन के प्रमुख कारक बनकर उभर रहे हैं।

पोषण सुरक्षा में अब सब्जियों की भूमिका को बेहद महत्व दिया जाता है। स्वस्थ जीवन की कुंजी हैं-हरी सब्जियां। सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को दूर करने में सब्जियां और माइक्रोग्रीन्स महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। माइकोग्रीन्स उत्पादन, कम समय और सीमित स्थान में पोषण देने वाली तकनीक के रूप में उभर रहा है। इससे शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में आय के अवसर उत्पन्न हो रहे हैं।

संरक्षित खेती जैसे पॉलीहाउस और नेटहाउस तकनीकों ने किसानों को मौसम की अनिश्चितताओं से बचाते हुए उच्च गुणवत्ता वाली फसलों का उत्पादन संभव बनाया है। पर्वतीय क्षेत्रों में पॉलीहाउस में टमाटर की खेती ने आय वृद्धि के नये आयाम स्थापित किये हैं। यह न केवल उत्पादन बढ़ाता है बल्कि किसानों को बेहतर बाजार मूल्य भी दिलाता है।

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव व्यावसायिक फलों और फूलों की खेती पर स्पष्ट दिखाई दे रहा है। तापमान में उतार-चढ़ाव, अनियमित वर्षा और उभरते कीट-रोगों का प्रकोप उत्पादन और गुणवत्ता दोनों को प्रभावित कर रहे हैं। ऐसे में सनकन नर्सरी जैसी कम लागत वाली तकनीकें और जलवायु अनुकूल प्रबंधन उपाय किसानों के लिए वरदान साबित हो सकते हैं। सजावटी पौधों के उद्यम में जीनोम संपादन तकनीक द्वारा उत्पादन की गुणवत्ता को बढ़ा सकते हैं।

फलों के क्षेत्र में आम में अनियमित फलन की समस्या का समाधान भी उन्नत प्रबंधन रणनीतियों के माध्यम से किया जा सकता है। वहीं आंवला, खुंब और देसी फलों का महत्व भी निरंतर बढ़ रहा है। ये न केवल पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं बल्कि सूखा प्रभावित और बारानी परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक उगाये जा सकते हैं। कैर को मरुस्थलीय एवं शुष्क क्षेत्रों का कायाकल्पकारी पौष्टिक फल माना जाता है। पंचकुट्टा जैसी पारंपरिक खाद्य प्रणालियां भी पोषण और स्थानीय संस्कृति के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

औषधीय और खाद्य फूलों का उत्पादन ग्रामीण उद्यमिता के लिए नये अवसर प्रदान कर रहा है। इनकी मांग घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में लगातार बढ़ रही है जिससे किसानों की आय में विविधता और स्थिरता आती है। इसके साथ ही देसी फलों का संरक्षण भी जैवविविधता को बनाए रखने और ग्रामीण खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है। जीरा में उन्नत बीज उत्पादन तकनीक अपनाकर आमदनी को बढ़ाया जा सकता है। इसके साथ ही छोटे और सीमित किसानों के लिए किफायती तकनीकों का विकास और प्रसार भी बेहद जरूरी है। अत: यह अंक इन्हीं उपरोक्त विषयों की समग्र एवं विस्तृत जानकारी प्रस्तुत करता है।

अनुराधा

(अनुराधा अग्रवाल)

गुणकारी

हरी पत्तेदार सब्जियों के फायदे अनेक

अर्जुन सिंह[1], रमेश कुमार यादव[2], सजील अहमद[3], निरंकार[4] और विनय कुमार[5]

हरी पत्तेदार सब्जियाँ वे सब्जियाँ होती हैं जिनकी कोमल कोंपलें, पत्तियाँ और कभी-कभी फूल भी खाने योग्य होते हैं। ये सब्जियाँ पोषण से भरपूर होती हैं और हमारे आहार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। हरी पत्तेदार सब्जियाँ केवल पोषण का स्रोत ही नहीं हैं, बल्कि ये शरीर को अनेक रोगों से बचाने में भी सहायक होती हैं। इनमें प्राकृतिक रूप से विटामिन, खनिज, एंटीऑक्सीडेंट और फाइबर प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। उदाहरण के तौर पर पालक, ब्रोकोली, मेथी, सरसों, धनिया, पुदीना, चुकंदर के पत्ते और सलाद पत्तियाँ जैसी सब्जियाँ विटामिन ए, सी, के तथा फोलिक एसिड से समृद्ध होती हैं। इनमें मौजूद कैल्शियम, आयरन और मैग्नीशियम हड्डियों को मजबूत बनाने, रक्त संचार को बेहतर करने और मांसपेशियों के सुचारु कार्य में सहायक होते हैं।

प्रमुख घटकों के लाभ

एंटीऑक्सीडेंट: शरीर में ऑक्सीडेटिव तनाव को कम करने में सहायक होते हैं।

आहारीय रेशा: पाचन तंत्र को स्वस्थ बनाए रखने में मदद करता है तथा इंसुलिन के स्राव को नियंत्रित करने में सहायक होता है।

खनिज पदार्थ: मैग्नीशियम और फॉस्फोरस जैसे खनिज गर्भावधि मधुमेह के जोखिम को कम करने में सहायक होते हैं।

अल्फा-लिनोलेनिक एसिड: कोशिका झिल्ली की संरचना को बनाए रखने और इंसुलिन संवेदनशीलता में सुधार करने में सहायक होता है।

विटामिन: इन सब्जियों में मौजूद विटामिन ई (α-टोकोफेरॉल), विटामिन ए (β-कैरोटीन) तथा विटामिन सी (एस्कॉर्बिक एसिड) शरीर में ऑक्सीडेटिव तनाव को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

हरी पत्तेदार सब्जियों का महत्व केवल पोषण तक सीमित नहीं है, बल्कि ये शरीर से विषाक्त पदार्थों को बाहर निकालने और आंतों के स्वास्थ्य को बनाए रखने में भी मदद करती हैं। इनमें पाए जाने वाले एंटीऑक्सीडेंट तत्व शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करते हैं और कोशिकाओं को ऑक्सीडेटिव तनाव से बचाते हैं।

दुनिया भर के स्वास्थ्य और आहार विशेषज्ञ संतुलित आहार में हरी पत्तेदार सब्जियों को शामिल करने की सलाह देते हैं। इनके नियमित सेवन से न केवल वजन नियंत्रण में मदद मिलती है, बल्कि शरीर की ऊर्जा भी बनी रहती है। साथ ही, मधुमेह, हृदय रोग, कैंसर और उच्च रक्तचाप जैसे रोगों के जोखिम को कम करने में भी इनका योगदान माना जाता है।

इस प्रकार, हरी पत्तेदार सब्जियों का नियमित सेवन संपूर्ण स्वास्थ्य के लिए

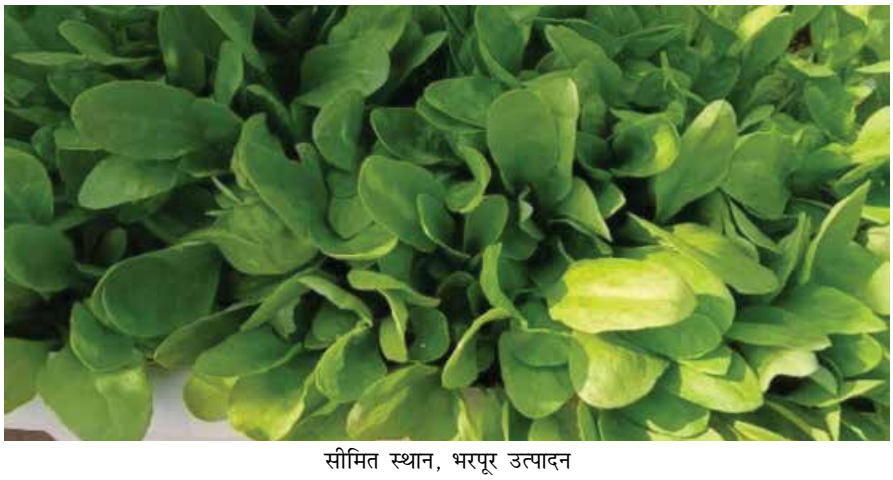

सीमित स्थान, भरपूर उत्पादन

[1]पीएचडी शोधार्थी, [2]प्रोफेसर, [4]वाईपी-II, सब्जी विज्ञान प्रभाग, [3]पीएचडी शोधार्थी, खाद्य विज्ञान एवं कटाई उपरांत प्रौद्योगिकी, [5]पीएचडी शोधार्थी, फल एवं उद्यान प्रौद्योगिकी, भाकृअनुप-भाकृअनुसं, पूसा, नई दिल्ली

अत्यंत लाभकारी है। आधुनिक जीवनशैली में बढ़ते जंक और प्रसंस्करित खाद्य उत्पादों के दुष्प्रभावों को संतुलित करने के लिए इन्हें दैनिक आहार में शामिल करना आवश्यक हो गया है।

हरी पत्तेदार सब्जियों में पाए जाने वाले फाइटोकेमिकल्स

हरी पत्तेदार सब्जियों में अनेक प्रकार के फाइटोकेमिकल्स पाए जाते हैं, जो मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी होते हैं। प्रमुख फाइटोकेमिकल्स इस प्रकार हैं:

- **फेनोलिक एसिड:** चौलाई की लगभग 100 ग्राम मात्रा में 35-40 मिलीग्राम।
- **फ्लेवोनोइड्स:** सरसों के पत्ते और लेट्यूस में लगभग 100 ग्राम में 20-25 मिलीग्राम।
- **कैरोटेनॉयड्स:** बथुआ, पालक और अमरंथ की लगभग 100 ग्राम मात्रा में 4-6 मिलीग्राम।

स्वस्थ उत्पादन, बेहतर पोषण

स्वास्थ्य लाभ

- **मधुमेह रोधी प्रभाव:** वर्तमान समय में मधुमेह के मामलों में तेजी से वृद्धि हो रही है। हरी पत्तेदार सब्जियाँ जैसे पालक, मेथी और सरसों, शरीर में ग्लूकोज के स्तर को नियंत्रित करने में सहायक होती हैं। इनमें मौजूद मैग्नीशियम टाइप-2 मधुमेह के जोखिम को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- **हृदय सुरक्षा प्रभाव:** हरी पत्तेदार सब्जियाँ हृदय रोगों के जोखिम को कम करने में सहायक होती हैं। उदाहरण के लिए, चुकंदर के पत्ते और लेट्यूस में नाइट्रेट की पर्याप्त मात्रा होती है, जो शरीर में नाइट्रिक ऑक्साइड में परिवर्तित होकर रक्त वाहिकाओं को चौड़ा करता है और हृदय स्वास्थ्य को बेहतर बनाता है।
- **उच्च रक्तचाप को कम करना:** हरी पत्तेदार सब्जियों में अल्फा-टोकोफेरॉल, कैरोटेनॉयड्स, ओमेगा-3 फैटी एसिड और फ्लेवोनोइड्स जैसे तत्व पाए जाते हैं, जो रक्तचाप को नियंत्रित करने में मदद करते हैं। उदाहरण के लिए, पालक और ब्रोकोली का नियमित सेवन उच्च रक्तचाप को नियंत्रित रखने में सहायक माना जाता है।
- **कैंसर रोधक प्रभाव:** हरी पत्तेदार सब्जियों में सल्फोराफेन और फेनिल आइसोथायोसाइनेट जैसे जैव सक्रिय यौगिक पाए जाते हैं, जो शरीर में कैंसर कोशिकाओं की वृद्धि को रोकने में सहायक होते हैं। ब्रोकोली और फूलगोभी में ये तत्व विशेष रूप से अधिक मात्रा में पाए जाते हैं।
- **रक्ताल्पता (एनीमिया) की रोकथाम:** हरी पत्तेदार सब्जियाँ आयरन और फोलेट का अच्छा स्रोत होती हैं, जो शरीर में लाल रक्त कोशिकाओं के निर्माण में सहायक होते हैं। पालक, मेथी और ब्रोकोली जैसी सब्जियाँ आयरन की कमी को दूर करने में मदद करती हैं।
- **पाचन तंत्र और आंतों का स्वास्थ्य:** हरी पत्तेदार सब्जियों में आहारीय रेशा (डायटरी फाइबर) प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, जो कब्ज को दूर करने और पाचन क्रिया को बेहतर बनाने में सहायक होता है। उदाहरण के लिए, धनिया और पुदीना आंतों के स्वास्थ्य को बनाए रखने में मदद करते हैं।
- **ग्लूकोसिनोलेट्स:** पत्ता गोभी, ब्रोकोली, केल तथा सरसों के पत्तों की लगभग 100 ग्राम मात्रा में 60-100 मिलीग्राम।
- **आइसोथायोसाइनेट:** सरसों के पत्ते और ब्रोकोली की लगभग 100 ग्राम में 50-70 मिलीग्राम।
- **एलाइलिक सल्फाइड्स:** हरी प्याज की लगभग 100 ग्राम मात्रा में 15-20 मिलीग्राम।
- **फाइटोस्टेरॉल:** मेथी और धनिया की लगभग 100 ग्राम मात्रा में 100-120 मिलीग्राम।

पोषक तत्व

हरी पत्तेदार सब्जियों में विभिन्न प्रकार के पोषक तत्व तथा एंटीऑक्सीडेंट फ्लेवोनोइड्स पाए जाते हैं, जो शरीर के लिए अत्यंत लाभकारी होते हैं। ये तत्व शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करने, कोशिकाओं को ऑक्सीडेटिव तनाव से बचाने तथा समग्र स्वास्थ्य को बेहतर बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

उत्पादन

- **भूमि का चयन:** हरी पत्तेदार सब्जियों की खेती के लिए जैविक पदार्थों से भरपूर तथा अच्छी जल निकासी वाली दोमट मिट्टी सबसे उपयुक्त मानी जाती है।

- **बुआई का समय:** गर्मी की फसल के लिए मार्च-अप्रैल में बुआई करें, जबकि सर्दी की फसल के लिए सितंबर-अक्टूबर उपयुक्त समय होता है।
- **सिंचाई:** इन सब्जियों की अच्छी वृद्धि के लिए नियमित सिंचाई आवश्यक होती है, लेकिन अधिक सिंचाई से बचना चाहिए। गर्मी के मौसम में 3-4 दिनों के अंतराल पर तथा सर्दी में 7-10 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करना उचित रहता है।
- **उर्वरक प्रबंधन:** हरी पत्तेदार सब्जियों में जैविक खाद जैसे गोबर की खाद और वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग लाभकारी होता है। इससे मृदा की उर्वरता बनी रहती है और फसल की गुणवत्ता भी बेहतर होती है।
- **खरपतवार नियंत्रण:** फसल में समय-समय पर निराई-गुड़ाई करना आवश्यक है, ताकि खरपतवारों की वृद्धि नियंत्रित रहे और पौधों को पर्याप्त पोषक तत्व मिलते रहें।
- **फसल की कटाई:** पालक, मेथी और सरसों जैसी पत्तेदार सब्जियाँ सामान्यत: 30-40 दिनों में कटाई के लिए तैयार हो जाती हैं, जबकि पत्तागोभी और ब्रोकोली की फसल लगभग 60-90 दिनों में तैयार होती है।

पोषण से समृद्ध पार्सले

सारणी: हरी सब्जियों में पोषक तत्वों एवं एंटीऑक्सीडेंट्स की अनुमानित मात्रा

पोषक तत्व	सब्जियाँ	मात्रा (प्रति 100 ग्राम)
विटामिन ए (बीटा-कैरोटीन)	पालक, गाजर, सरसों के पत्ते	4690-6290 आईयू
विटामिन सी	ब्रोकोली, पालक, गोभी	30-89 मि.ग्रा.
विटामिन के	केल, पालक, ब्रोकोली	100-500 माइक्रोग्राम
आयरन	पालक, मेथी, सरसों के पत्ते	2-4 मि.ग्रा.
मैग्नीशियम	ब्रोकोली, पालक, मेथी	20-79 मि.ग्रा.
कैल्शियम	सरसों के पत्ते, ब्रोकोली, पालक	50-150 मि.ग्रा.
आहारीय रेशा (फाइबर)	मेथी, ब्रोकोली, पालक	2-4 ग्रा.
ओमेगा-3 फैटी एसिड	पालक, ब्रोकोली	100-300 मि.ग्रा.
फ्लेवोनोइड्स (केम्पफेरोल, क्वेरसेटिन)	ब्रोकोली, पालक, धनिया	2-12 मि.ग्रा.

सारणी: हरी पत्तेदार सब्जियों में मौजूद विशिष्ट एंटीऑक्सीडेंट की भूमिका

एंटीऑक्सीडेंट	प्रमुख स्रोत सब्जियाँ	स्वास्थ्य लाभ
केम्पफेरोल	ब्रोकोली, पालक	सूजन को कम करने में सहायक, कैंसर रोधक गुण
क्वेरसेटिन	धनिया, ब्रोकोली	हृदय स्वास्थ्य में सुधार, सूजन को कम करने में सहायक
लुटेइन एवं जीएक्सैंथिन	पालक, केल	आंखों के स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में सहायक
सल्फोराफेन	ब्रोकोली, फूलगोभी	कैंसर रोधी प्रभाव
एंथोसायनिन	बैंगनी पत्तेदार सब्जियाँ	कोशिकाओं की सुरक्षा तथा हृदय स्वास्थ्य में सहायक

हरी पत्तेदार सब्जियाँ स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी मानी जाती हैं और अनेक रोगों की रोकथाम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इनमें प्रचुर मात्रा में पाए जाने वाले विटामिन, खनिज, एंटीऑक्सीडेंट और आहारीय रेशा शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बनाते हैं।

इनके नियमित सेवन से मधुमेह, हृदय रोग, उच्च रक्तचाप, कैंसर, एनीमिया तथा पाचन संबंधी समस्याओं के जोखिम को कम किया जा सकता है। इस प्रकार संतुलित और पौष्टिक आहार के लिए हरी पत्तेदार सब्जियों को दैनिक आहार में अवश्य शामिल करना चाहिए।

पुष्प उत्पादन में जीनोम संपादन

लशिका मीना, तिलक चंद्र, मीर आसिफ इकबाल, दिनेश कुमार और **सारिका जयसवाल**

सजावटी पौधों में फूलों का रंग उनकी प्रमुख विशेषता होती है, जो उनकी बाजार मांग और आर्थिक मूल्य को निर्धारित करता है। पारंपरिक प्रजनन विधियों द्वारा रंगों में विविधता लाना सीमित तथा समय-साध्य प्रक्रिया रही है, किंतु सीआरआईएसपीआर/कैस 9 जैसी जीनोम संपादन तकनीकों ने इस क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन किया है। इस तकनीक की सहायता से वैज्ञानिक फूलों के रंगद्रव्यों, जैसे एंथोसायनिन, फ्लेवोनोइड और कैरोटीनॉयड से संबंधित जैवसंश्लेषण मार्गों के जीनों में सटीक और लक्षित परिवर्तन कर सकते हैं। पेटुनिया, टोरेनिया, पॉइन्सेटिया तथा जापानी जेंटियन जैसे सजावटी पौधों में सीआरआईएसपीआर आधारित जीनोम संपादन के माध्यम से नए और आकर्षक रंग विकसित किए गए हैं, जिन्हें पारंपरिक विधियों से प्राप्त करना संभव नहीं था। यह तकनीक न केवल सजावटी पौधों की आनुवंशिक विविधता और सौंदर्य को बढ़ाने में सहायक है, बल्कि पुष्प उत्पादन उद्योग को व्यावसायिक दृष्टि से भी सशक्त बनाती है। भविष्य में जीनोम संपादन तकनीकों के निरंतर विकास से फूलों में रंगों की विविधता, स्थायित्व और उपभोक्ता की पसंद के अनुरूप नए गुणों का विकास संभव होगा, जिससे पुष्प उत्पादन उद्योग को वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाने में महत्वपूर्ण योगदान मिलेगा।

सजावटी पौधे अपनी सुंदरता, रंग-बिरंगे फूलों, सुगंध और आकर्षक पत्तियों के कारण विशेष महत्व रखते हैं। ये पौधे पर्यावरण को सुशोभित करने के साथ-साथ आर्थिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। पुष्प कृषि सजावटी पौधों की खेती और व्यापार से जुड़ा वह क्षेत्र है, जिसमें फूलों, पौधों, गमलों, बीजों तथा उनसे संबंधित उत्पादन, प्रसंस्करण और विपणन शामिल हैं।

वर्ष 2021 तक फूलों और सजावटी पौधों का वैश्विक बाजार लगभग 27.23 बिलियन अमेरिकी डॉलर का था, जिसके वर्ष 2029 तक 45.07 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुँचने की संभावना है। यह लगभग 6.5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर को दर्शाता है।

भारत, विश्व में फूल उत्पादन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखता है और यह दूसरा सबसे बड़ा फूल उत्पादक देश है। देश में लगभग 2.85 लाख हैक्टर क्षेत्र में फूलों की खेती की जाती है। वर्ष 2023-24 के दौरान भारत में लगभग 9.47 लाख मीट्रिक टन कर्तित फूल तथा 22.84 लाख मीट्रिक टन खुले फूलों का उत्पादन हुआ।

टोरेनिया फोरनेरी

भारत में प्रमुख फूल उत्पादक राज्यों में तमिलनाडु (21%), कर्नाटक (16%), पश्चिम बंगाल (14%), मध्य प्रदेश (12%) के अलावा गुजरात, आंध्र प्रदेश, हरियाणा, झारखंड और असम शामिल हैं। वैश्विक बाजार में भारत फूलों के निर्यात में लगभग 14वें स्थान पर है। देश से प्रमुख रूप से गुलाब, कार्नेशन, ऑर्किड, गेंदा, लिली तथा क्राइसेन्थेमम जैसे फूलों का निर्यात किया जाता है। देश की विविध जलवायु परिस्थितियाँ

कृषि जैव सूचना विज्ञान प्रभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि सांख्यिकी अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

अवसर

भारत में पुष्प उत्पादन उद्योग का वार्षिक मूल्य वर्ष 2019-20 में लगभग 2660 बिलियन रुपये तक पहुँच गया, जो कृषि क्षेत्र के कुल उत्पादन का लगभग 2 प्रतिशत है। वर्ष 2023-24 में भारत ने 19,677.89 मीट्रिक टन फूलों का निर्यात किया, जिसकी कुल कीमत लगभग 717.83 करोड़ रुपये रही। भारत से फूलों का प्रमुख निर्यात अमेरिका, नीदरलैंड, यूनाइटेड किंगडम, जर्मनी, संयुक्त अरब अमीरात और कनाडा जैसे देशों में होता है। यह उल्लेखनीय है कि प्रति हैक्टर पुष्प उत्पादन से होने वाली आय पारंपरिक फसलों की तुलना में लगभग 20 गुना अधिक हो सकती है। देश में पुष्प उत्पादन उद्योग लाखों लोगों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार प्रदान करता है। किसान, नर्सरी संचालक, फूल विक्रेता, पैकेजिंग, सजावट तथा इवेंट मैनेजमेंट जैसे अनेक क्षेत्रों में इसका महत्वपूर्ण योगदान है। विशेष रूप से छोटे और सीमांत किसान इससे काफी लाभान्वित हो रहे हैं और यह उद्योग उनकी आय का एक प्रमुख स्रोत बनता जा रहा है, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका के नए अवसर उत्पन्न हो रहे हैं।

तथा अपेक्षाकृत कम श्रम लागत इसे वैश्विक प्रतिस्पर्धा में मजबूत बनाती हैं।

सजावटी पौधों में फूलों का रंग उनकी सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है, जो उनकी सौंदर्य गुणवत्ता, बाजार मांग और आर्थिक मूल्य को निर्धारित करता है।

सीआरआईएसपीआर/कैस9 के उपयोग से वैज्ञानिकों ने विभिन्न सजावटी पौधों में फूलों के रंग को सफलतापूर्वक परिवर्तित किया है, जिसके परिणामस्वरूप नए और आकर्षक रंग विकसित किए गए हैं, जिन्हें पारंपरिक प्रजनन विधियों से प्राप्त करना संभव नहीं था। इसके अतिरिक्त, इस तकनीक का उपयोग सजावटी पौधों में ब्रैक्ट्स (पुष्पावरणीय पत्तियों) के रंग में परिवर्तन करने के लिए भी प्रभावी रूप से किया गया है।

उदाहरण के तौर पर पेटुनिया, ऑर्निथोगैलम ड्यूबियम, टोरेनिया फोरनेरी, पॉइन्सेटिया तथा जापानी जेंटियन जैसी प्रजातियों पर किए गए अध्ययन सजावटी बागवानी में सीआरआईएसपीआर तकनीक की

आकर्षक पेटुनिया

मनमोहक पुष्प

बहुमुखी प्रतिभा और संभावनाओं को स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं। यह तकनीक भविष्य में पुष्प उत्पादन उद्योग में नए रंग, बेहतर गुणवत्ता और अधिक आकर्षक सजावटी पौधों के विकास का मार्ग प्रशस्त कर सकती है।

पेटुनिया: यह अपने जीवंत, बहुरंगी फूलों, बहुमुखी वृद्धि प्रकृति तथा विभिन्न पर्यावरणीय परिस्थितियों में अनुकूल रूप से बढ़ने की क्षमता के कारण सजावटी बागवानी में अत्यंत लोकप्रिय पौधा है। जीनोम संपादन तकनीक सीआरआईएसपीआर/कैस 9 का उपयोग पेटुनिया में फ्लेवेनोन-3-हाइड्रॉक्सीलेज जीन को फेरबदल करने के लिए किया गया, जो फ्लेवोनोइड जैवसंश्लेषण मार्ग का एक महत्वपूर्ण घटक है।

इस जीन में सफल उत्परिवर्तन के परिणामस्वरूप फूलों के रंग में परिवर्तन देखा गया, जिससे बैंगनी रंग के स्थान पर हल्के बैंगनी-गुलाबी रंग के फूल विकसित हुए। रंग में यह परिवर्तन पेटुनिया की सौंदर्यात्मक विविधता को बढ़ाने में सहायक है, जिससे यह पौधा अधिक आकर्षक बनता है और उपभोक्ताओं की व्यापक श्रेणी को आकर्षित कर सकता है। साथ ही बगीचों, सजावटी कार्यक्रमों तथा पुष्प सज्जा में इसके उपयोग की संभावनाएँ भी बढ़ जाती हैं, जिससे इसकी विपणन क्षमता में वृद्धि होती है।

टोरेनिया फोरनेरी: टोरेनिया फोरनेरी (विशबोन फ्लावर) एक छाया प्रिय सजावटी पौधा है, जो अपने आकर्षक, कीप के आकार के फूलों के लिए जाना जाता है। इसके फूल सामान्यत: बैंगनी, नीले और गुलाबी रंगों में पाए जाते हैं तथा यह लटकती टोकरियों और बगीचे की सीमाओं को सजाने के लिए उपयुक्त माना जाता है।

इस पौधे में सीआरआईएसपीआर/कैस 9 तकनीक का उपयोग करके फ्लेवेनोन-3-हाइड्रॉक्सीलेज (F3H) जीन में संशोधन किया गया, जिसके परिणामस्वरूप हल्के नीले रंग के फूल प्राप्त हुए। इस अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि फ्लेवोनोइड जैवसंश्लेषण मार्ग में परिवर्तन करके फूलों की रंजकता को नियंत्रित किया जा सकता है तथा सीआरआईएसपीआर/कैस9 तकनीक इसके लिए अत्यंत सटीक और प्रभावी माध्यम है।

इस प्रकार जीन संपादन के माध्यम से फूलों के रंगों में विविधता उत्पन्न कर विभिन्न उपभोक्ता पसंदों को पूरा किया जा सकता है तथा सजावटी पौधों की आकर्षकता और बाजार संभावनाओं में वृद्धि की जा सकती है।

उपयोगिता

वर्तमान में जीनोम संपादन तकनीक अत्यंत महत्वपूर्ण और उपयोगी सिद्ध हो रही है। इस तकनीक के माध्यम से वैज्ञानिक किसी जीव के डी.एन.ए. में वांछित स्थान पर सटीक रूप से डी.एन.ए. अनुक्रम को जोड़, हटाने या संशोधित करने में सक्षम होते हैं, जिससे पौधों के विभिन्न गुणों में आवश्यक परिवर्तन संभव हो पाता है। ISDra2TnpB तथा सीआरआईएसपीआर/कैस 9 जैसी उन्नत तकनीकों ने आनुवंशिक सुधार के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्रदान की हैं। इन तकनीकों के उपयोग से फ्लोरीकल्चर उद्योग में नवाचार और विकास के नए अवसर उत्पन्न हो रहे हैं। विशेष रूप से सीआरआईएसपीआर/कैस 9 तकनीक के आगमन ने पौधों में सटीक आनुवंशिक संशोधन को संभव बनाया है, खासकर उन जैविक मार्गों में जो फूलों के रंग को नियंत्रित करते हैं। यह जीन-संपादन तकनीक शोधकर्ताओं को एंथोसायनिन, फ्लेवोनोइड तथा कैरोटीनॉयड जैसे रंगद्रव्यों के जैवसंश्लेषण से जुड़े विशिष्ट जीनों को लक्षित कर उनमें परिवर्तन करने की क्षमता प्रदान करती है।

पॉइन्सेटिया: पॉइन्सेटिया (यूफोर्बिया पल्चरिमा) एक लोकप्रिय सजावटी पौधा है, जो अपने आकर्षक लाल, गुलाबी या सफेद सहपत्रों (ब्रैक्ट्स) के लिए जाना जाता है। यह पौधा विशेष रूप से उत्सव और त्योहारों की सजावट में व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है तथा गर्म जलवायु में अच्छी तरह विकसित होता है।

इस पौधे में सीआरआईएसपीआर/कैस 9 तकनीक का उपयोग करके फ्लेवोनोइड 3'-हाइड्रॉक्सीलेज (F3'5'H) जीन में विलोपन किया गया। इस जीन संपादन के परिणामस्वरूप सहपत्रों के रंग में परिवर्तन देखा गया, जिससे चमकीले लाल रंग के स्थान पर लाल-नारंगी रंग विकसित हुआ। यह परिवर्तन सहपत्रों में पेलार्गोनिडिन और साइनिडिन रंगद्रव्यों के अनुपात में वृद्धि के कारण हुआ।

इस प्रकार जीनोम संपादन तकनीक के माध्यम से पॉइन्सेटिया के सहपत्रों के रंग में परिवर्तन कर उसका सजावटी आकर्षण और बाजार मूल्य को बढ़ाया जा सकता है।

जापानी जेंटियन: जापानी जेंटियन (जेंटियाना स्कैबरा) एक बहुवर्षीय (बारहमासी) पौधा है, जो अपने आकर्षक नीले, कीप के आकार के फूलों के लिए प्रसिद्ध है। यह पौधा सामान्यत: ठंडे और छायादार वातावरण में अच्छी तरह विकसित होता है तथा बगीचों और पुष्प सज्जा में अपने उच्च सजावटी मूल्य के कारण अत्यंत लोकप्रिय है।

जापानी जेंटियन में सीआरआईएसपीआर/कैस 9 तकनीक का उपयोग एंथोसायनिन

उन्नत तकनीक से उत्पादित पुष्प

अलौकिक पॉइन्सेटिया पुष्प

संश्लेषण से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण जीनों-जैसे एंथोसायनिन 5-O-ग्लाइकोसिलट्रांसफेरेज, एंथोसायनिन 3'-O-ग्लाइकोसिलट्रांसफेरेज तथा एंथोसायनिन 5/3'-एरोमैटिक एसाइलट्रांसफेरेज को निष्क्रिय (विलोपित) करने के लिए किया गया।

इन आनुवंशिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप फूलों के रंग में उल्लेखनीय परिवर्तन देखा गया। सामान्य चमकीले नीले रंग के स्थान पर हल्के लाल-बैंगनी तथा हल्के गुलाबी जैसे नए रंग विकसित हुए। इस प्रकार जीनोम संपादन तकनीक सजावटी पौधों में रंगों की नई विविधता विकसित करने और उनके सजावटी तथा व्यावसायिक महत्व को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

इस लेख में प्रस्तुत विभिन्न उदाहरण यह दर्शाते हैं कि जीन संपादन तकनीक सजावटी पौधों के गुणों को बेहतर बनाने में अत्यंत प्रभावी है, विशेषकर फूलों की रंजकता में परिवर्तन के संदर्भ में। जैवसंश्लेषण मार्गों में विशिष्ट जीनों को लक्षित कर शोधकर्ता वांछित रंग विशेषताओं वाली नई फूल किस्मों का विकास कर सकते हैं, जिससे बागवानी उद्योग, बाजार संभावनाओं तथा उपभोक्ता प्राथमिकताओं पर सकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है।

पारंपरिक आनुवंशिक संशोधन विधियों की अपेक्षा जीनोम संपादन के माध्यम से फूलों के रंग में परिवर्तन करने की क्षमता नए अवसरों के द्वार खोलती है, जो व्यावसायिक और सौंदर्यात्मक दोनों दृष्टियों से लाभकारी है। भविष्य में इस क्षेत्र में जलवायु अनुकूल किस्मों का विकास, उनके व्यावसायीकरण तथा वैश्विक स्तर पर नियामक सहयोग की संभावनाएँ भी बढ़ सकती हैं।

बाराहामसी पुष्प

हालाँकि, इस तकनीक के व्यापक उपयोग के लिए सामाजिक स्वीकृति और पारदर्शी नीतियाँ भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। जैसे-जैसे CRISPR तकनीक का विकास आगे बढ़ेगा, पौध आनुवंशिकी में इसके अनुप्रयोग भी बढ़ेंगे, जिससे सजावटी बागवानी के क्षेत्र में और अधिक नवाचार संभव होंगे। इसके साथ ही उच्च थ्रुपुट सीक्वेंसिंग, बायोइन्फॉर्मेटिक्स तथा मल्टी ओमिक्स दृष्टिकोणों के समावेश से भविष्य में और अधिक सटीक तथा वांछित रंगों वाले सजावटी पौधों का विकास किया जा सकेगा।

पुष्प उत्पादन हेतु नया मार्ग

जीनोम संपादन तकनीक ने फूलों के रंग के विकास और नियंत्रण में पारंपरिक प्रजनन विधियों की सीमाओं को काफी हद तक पार कर लिया है। एंथोसायनिन जैवसंश्लेषण मार्ग से जुड़े प्रमुख जीनों की पहचान और उनमें लक्षित परिवर्तन के माध्यम से फूलों में नई रंग विविधताओं का विकास संभव हुआ है। उदाहरण के लिए, कुछ शोधों में पाया गया है कि F3'5'H जीन की अभिव्यक्ति को दबाने से साइक्लेमन के फूलों का रंग बैंगनी से बदलकर लाल और गुलाबी हो गया। इसी प्रकार RNA इंटरफेरेंस तथा अन्य जीन संपादन तकनीकों के माध्यम से जेंटियन जैसे फूलों में हल्के नीले और लाल रंग विकसित किए गए हैं। इस प्रकार आनुवंशिक रूप से संशोधित पौधों के माध्यम से न केवल वैज्ञानिक अनुसंधान को बढ़ावा मिला है, बल्कि सजावटी पौधों में रंगों की विविधता और उनके बाजार मूल्य में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। जीनोम संपादन तकनीकों के निरंतर विकास के साथ फूलों के रंगों की विविधता, स्थायित्व तथा उपभोक्ता की पसंद के अनुरूप अनुकूलन की संभावनाएँ भी बढ़ रही हैं। इस तकनीक ने पुष्प कृषि को पारंपरिक सीमाओं से आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। नवीन तकनीकें, जैसे ISDra2, TnpB तथा CRISPR&dCas9, फूलों के रंग के साथ-साथ रोग प्रतिरोधक क्षमता और पर्यावरणीय अनुकूलन में भी सुधार लाने की दिशा में उपयोगी सिद्ध हो रही हैं।

सब्जियों की पौधशाला का प्रबंधन

राज कुमार[1], कनक लता[2], ए. के. राय[3], शक्ति खजुरिया[2] और **अमित कुमार[1]**

सब्जियों की पौध कम स्थान पर अधिक देखरेख में तैयार करने की प्रक्रिया को पौधशाला कहते हैं। टमाटर, मिर्च, बैंगन, फूलगोभी, पत्तागोभी, प्याज आदि सब्जियों की पौध को पौधशाला में तैयार करने के उपरांत रोपाई की जाती है। इससे बीज की बचत होती है, खेत की तैयारी के लिए अधिक समय मिल जाता है तथा हरित गृह में पौध उगाकर अगेती फसल भी ली जा सकती है। सब्जियों की पौध तैयार करने के लिए सड़ी हुई गोबर की खाद, उठी हुई पौधशाला क्यारियाँ, उचित गुणवत्ता वाला बीज, सही दूरी पर बीजों की बुआई तथा उर्वरकों और कीटनाशकों का उचित मात्रा में उपयोग करके स्वस्थ पौध तैयार की जा सकती है। सामान्यत: पौधशाला में बीज की बुआई के 20-25 दिनों बाद, या जब पौध की लंबाई 10-15 सें.मी. हो जाए अथवा पौध में तीन-चार वास्तविक पत्तियाँ आ जाएँ, तब पौध रोपाई के लिए तैयार हो जाती है।

पौधशाला वह स्थान या व्यवस्था है जहाँ सब्जियों अथवा अन्य फसलों की पौध को सीमित क्षेत्र में उचित देखभाल के साथ तैयार किया जाता है। यहाँ उगाई गई स्वस्थ एवं मजबूत पौध को बाद में तैयार खेत में रोपाई के माध्यम से लगाया जाता है।

कई सब्जियाँ ऐसी होती हैं जिनकी खेती सीधे बीज बोने के बजाय पहले पौध तैयार करके की जाती है। इनमें मुख्यत: सोलेनेसी कुल की सब्जियाँ जैसे टमाटर, मिर्च और

स्वस्थ पलवार

[1]कृषि विज्ञान केंद्र, (भाकृअनुप-विपकृअनुसं), बागेश्वर काफलीगैर, उत्तराखंड 263 628; [2]कृषि विज्ञान केन्द्र (भाकृअनुप-केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान)-पंचमहल; [3]कृषि विज्ञान केन्द्र (भाकृअनुप-केंद्रीय चावल अनुसंधान संस्थान)-कोडरमा

बैंगन, गोभी वर्गीय सब्जियाँ जैसे फूलगोभी, पत्तागोभी तथा ब्रोकोली और लिलिएसी कुल की फसल जैसे प्याज शामिल हैं। इन फसलों की पौध तैयार कर रोपाई करने के निम्न प्रमुख लाभ हैं-

- पौधशाला में छोटे एवं घने क्षेत्र में उगे नए, कोमल पौधों की देखरेख करना अधिक सुविधाजनक होता है।
- पौध को पौधशाला के हरित गृह में उगाकर अगेती फसल प्राप्त की जा सकती है।
- रोपाई के बाद खेत में पौधे एक समान गति से वृद्धि करते हैं और लगभग एक साथ फल तुड़ाई के लिए तैयार हो जाते हैं।
- पौधशाला में तैयार पौध रोपने से भूमि की बचत होती है तथा खेत की तैयारी के लिए अधिक समय मिल जाता है।
- पौध तैयार करने में कम बीजों की आवश्यकता होती है।
- जिस खेत में रोपाई करनी होती है, उसमें खड़ी फसल को 2-3 सप्ताह का अतिरिक्त समय मिल जाता है।
- कीट एवं रोगों से बचाव के लिए उपयुक्त साधनों का सही समय पर प्रभावी ढंग से उपयोग कर बेहतर प्रबंधन किया जा सकता है।

पौधशाला की उठी हुई क्यारी

तैयारी एवं क्यारी निर्माण

पौधशाला में स्वस्थ एवं मजबूत पौध प्राप्त करने के लिए मिट्टी का उपयुक्त होना आवश्यक है। पौधशाला की मिट्टी भुरभुरी, महीन, जीवांशयुक्त, पोषक तत्वों से भरपूर तथा नमी बनाए रखने वाली होनी चाहिए, ताकि बीजों का अच्छा अंकुरण और पौधों की संतुलित वृद्धि हो सके।

भूमि की तैयारी के लिए सबसे पहले खेत की जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए। इसके बाद प्रति वर्ग मीटर लगभग 8-10 कि.ग्रा. अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद मिलाकर हैरो और पाटा लगाकर मिट्टी को समतल तथा भुरभुरा बना लेना चाहिए।

पौध को मृदाजनित रोगों से बचाने के लिए मृदा उपचार करना भी आवश्यक होता है। इसके लिए फॉर्मलीन के 1 प्रतिशत घोल का लगभग 4.5-5 लीटर प्रति वर्ग मीटर की दर से प्रयोग कर मिट्टी को लगभग 15 सें.मी. गहराई तक भिगो देना चाहिए। इसके बाद उपचारित भूमि को एक दिन तक पॉलीथीन शीट से ढककर रखना चाहिए, जिससे फॉर्मलीन की गैस मिट्टी के कण-कण में पहुँचकर हानिकारक कवकों एवं कीटों को नष्ट कर सके। अगले दिन पॉलीथीन हटाकर मिट्टी को थोड़ा फैला देना चाहिए, ताकि फॉर्मलीन की गंध पूरी तरह निकल जाए।

पौधशाला की क्यारियाँ सामान्यत: लगभग 1 मीटर चौड़ी तथा सुविधानुसार लंबाई में बनाई जाती हैं, जिससे निराई-गुड़ाई और अन्य कृषि कार्य करने में सुविधा रहती है। वर्षा ऋतु में क्यारियाँ लगभग 15 सें.मी. ऊँची बनानी चाहिए, ताकि उनमें वर्षा का पानी एकत्र न हो और पौधों को नुकसान न पहुँचे।

फसल, प्रजाति एवं बीज मात्रा

पौध तैयार कर रोपाई से उगाई जाने वाली सब्जियों की खेती में उच्च गुणवत्ता

बीज उपचार

स्थान का चयन

पौधशाला स्थापित करते समय स्थान का सही चयन अत्यंत महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि इससे पौध की वृद्धि और गुणवत्ता पर सीधा प्रभाव पड़ता है। स्थान का चयन करते समय निम्न बिंदुओं पर ध्यान देना चाहिए-

- पौधशाला का स्थान घर या फार्म कार्यालय के निकट होना चाहिए, ताकि समय-समय पर पौध की देखभाल और निरीक्षण आसानी से किया जा सके।
- वर्षा ऋतु में पौधशाला को हमेशा ऊँचे स्थान पर बनाना चाहिए, जिससे वर्षा का पानी क्यारियों में न ठहरे।
- पौधशाला सिंचाई के स्रोत के पास होनी चाहिए, क्योंकि पौधों को नियमित रूप से पानी देने की आवश्यकता होती है।
- भूमि में जल निकास की अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए तथा मिट्टी जीवांशयुक्त और उपजाऊ हो। मिट्टी का पी.एच. मान लगभग 6.5 से 7.0 के बीच होना उपयुक्त माना जाता है।
- पौधशाला ऐसे खुले स्थान पर बनानी चाहिए जहाँ पर्याप्त मात्रा में सूर्य का प्रकाश प्राप्त हो सके। प्रकाश की कमी होने पर पौधे कमजोर, पीले और रोगग्रस्त हो सकते हैं।
- वर्षा ऋतु में लगभग 15-20 सें.मी. ऊँची क्यारियाँ बनानी चाहिए, जबकि ग्रीष्म ऋतु में समतल या 15-20 सें.मी. गहरी क्यारियाँ बनाकर पौध तैयार करना उचित रहता है।

वाले बीज का चयन अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। अच्छी गुणवत्ता के बीज खेती की सफलता की पहली शर्त माने जाते हैं। इसलिए बीज का चयन करते समय क्षेत्र की जलवायु और परिस्थितियों के अनुसार उपयुक्त प्रजाति का चयन करना चाहिए। साथ ही बीज हमेशा विश्वसनीय संस्थानों से ही खरीदना चाहिए, ताकि उसकी शुद्धता और अंकुरण क्षमता सुनिश्चित हो सके। इसके लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (भाकृअनुप), राज्य कृषि विश्वविद्यालय, राष्ट्रीय बीज निगम तथा राज्य बीज निगम जैसे प्रमाणित और भरोसेमंद स्रोतों से बीज प्राप्त करना अधिक उपयुक्त रहता है।

बीज उपचार एवं बुआई

पौधशाला में स्वस्थ एवं रोगमुक्त पौध प्राप्त करने के लिए बीज उपचार करना आवश्यक होता है। इसके लिए बीज को कैप्टॉन, थीरम या कार्बेण्डाजिम (बाविस्टिन) में से किसी एक फफूंदनाशक से 3 ग्राम दवा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। इससे बीज जनित एवं मृदाजनित रोगों से पौध की सुरक्षा होती है और अंकुरण भी अच्छा होता है।

सामान्यत: पौधशाला में बीजों की बुआई बिखेरकर भी की जाती है, लेकिन पंक्तियों में बुआई करना अधिक उपयुक्त माना जाता है। पंक्तियों में बुआई करने से पौधों को बढ़ने के लिए पर्याप्त स्थान मिलता है तथा निराई-गुड़ाई जैसी अंतरवर्ती क्रियाएँ करना भी आसान हो जाता है। सामान्यत: पंक्तियों के बीच की दूरी लगभग 6-8 सें.मी. रखनी चाहिए।

बीजों की बुआई के लिए क्यारी में 1-2 सें.मी. गहरी छोटी नालियाँ बनाकर उनमें बीजों को समान रूप से डालना चाहिए। इसके बाद बीजों को अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद या बारीक मिट्टी की पतली परत से ढक देना चाहिए। बुआई के तुरंत बाद हजारे (झारी) की सहायता से हल्की सिंचाई करनी चाहिए।

बीजों के शीघ्र अंकुरण के लिए क्यारियों को घास-फूस या प्लास्टिक की पलवार से लगभग दो दिन तक ढककर रखना लाभकारी होता है। पौधशाला में सुबह और शाम हल्की सिंचाई हजारे से करनी चाहिए। दो दिनों बाद पलवार हटा देनी चाहिए, क्योंकि अधिक समय तक ढकी रहने पर पौधे पीले, लंबे और कमजोर हो सकते हैं। ऐसे पौधे कीट

पंक्ति में बीज बुआई

बीज बुआई उपरांत देखरेख

बीज की बुआई के बाद पौधशाला की नियमित देखभाल करना आवश्यक होता है, ताकि पौध स्वस्थ एवं मजबूत विकसित हो सके। पौधशाला में सामान्यत: 1-2 दिन के अंतराल पर हजारे (झारी) की सहायता से हल्की सिंचाई करनी चाहिए, जिससे मृदा में पर्याप्त नमी बनी रहे। यदि पौधे पीले दिखाई देने लगें तो हल्की मात्रा में यूरिया का घोल बनाकर छिड़काव किया जा सकता है, जिससे पौधों में नाइट्रोजन की पूर्ति और वृद्धि में सुधार होता है। पौधशाला में आर्द्रगलन (डैम्पिंग-ऑफ) एक हानिकारक रोग होता है, जिसमें छोटे पौधे मुरझाकर सड़ जाते हैं। इस रोग की रोकथाम के लिए बीज और मिट्टी का उपचार पहले से करना आवश्यक होता है। यदि पौधशाला में इस रोग के लक्षण दिखाई दें, तो रिडोमिल एम.जेड. का 0.1 प्रतिशत घोल बनाकर पौधों की जड़ों के पास डालना चाहिए, जिससे रोग का प्रभाव नियंत्रित किया जा सकता है।

बीज अंकुरण

सारणी: सब्जियों की उपयुक्त प्रजातियां, बीज मात्रा एवं बुआई समय

फसल	बीज मात्रा (कि.ग्रा./हैक्टर)	बुआई का समय	उपयुक्त प्रजातियाँ
टमाटर	0.4-0.5	जून-जुलाई, अक्टूबर-नवंबर, फरवरी-मार्च	काशी विशेष, काशी अनुपम, पूसा शीतल, पूसा हाइब्रिड-4, अर्का विशेष, अर्का रक्षक, अर्का सम्राट, अर्का अनन्या, अर्का वरदान, अर्का अभिजीत
बैंगन	0.4-0.5	जून-जुलाई, अक्टूबर-नवंबर, फरवरी-मार्च	पूसा अंकुर, काशी हिमानी, काशी कोमल, काशी प्रकाश, काशी तरु, काशी संदेश, अर्का उन्नति, अर्का हर्षिता, अर्का अविनाश, अर्का नीलकंठ, अर्का निधि, अर्का शिरीष, अर्का शील
मिर्च	0.4-0.5	जून-जुलाई, सितंबर-अक्टूबर	पूसा सदाबहार, पूसा दीप्ती, अर्का गगन, अर्का तन्वी, अर्का सानवी, अर्का ख्याति, अर्का श्वेता, अर्का मेघना, अर्का हरिता, अर्का अभिर, अर्का सुफल, अर्का लोहित
फूलगोभी	1.5-2.0	जून-नवंबर	अर्ली कुवारी, पूसा अर्ली सिंथेटिक, पूसा शरद, पूसा सिंथेटिक
पत्ता गोभी	0.5-0.6	अगस्त-सितंबर	पूसा शुभ्रा, पंत शुभ्रा, पूसा स्नोबॉल-1, पूसा स्नोबॉल के-1, गोल्डन एकर, प्राइड ऑफ इंडिया, पूसा ड्रम हेड, पूसा मुक्ता, पूसा अगेती
प्याज	8-10	जुलाई-अगस्त, मार्च	पूसा रेड, पूसा रतनार, अर्का बिंदु, हिसार-11, पूसा व्हाइट फ्लैट, पूसा व्हाइट राउंड

पौध प्रतिरोपण

पौध का प्रतिरोपण उस समय करना चाहिए जब पौधे सक्रिय वृद्धि की अवस्था में हों। प्रतिरोपण में अधिक देरी होने पर पौधे कमजोर हो सकते हैं। सामान्यत: पौधशाला में बीज की बुआई के 20-25 दिनों बाद, या जब पौध की लंबाई लगभग 10-15 सें.मी. हो जाए अथवा पौध में तीन-चार वास्तविक पत्तियाँ विकसित हो जाएँ, तब पौध रोपाई के लिए उपयुक्त मानी जाती है। छोटी और कोमल पौध प्रतिरोपण के समय लगने वाले झटके को अपेक्षाकृत आसानी से सहन कर लेती है। यदि मिट्टी गहरी, उपजाऊ तथा पर्याप्त नमी वाली हो, तो प्रतिरोपण की सफलता की संभावना बढ़ जाती है। सामान्यत: प्रतिरोपण का कार्य शाम के समय, लगभग चार बजे के बाद करना चाहिए, जिससे पौधों को रात के ठंडे वातावरण में स्थापित होने का पर्याप्त समय मिल सके। प्रतिरोपण के तुरंत बाद हल्की सिंचाई अवश्य करनी चाहिए।

एवं रोगों, विशेषकर आर्द्रपतन (डैम्पिंग-ऑफ) रोग के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाते हैं।

पौध निष्कर्षण

पौधशाला से पौध निकालने से 2-3 दिन पहले सिंचाई बंद कर देनी चाहिए, ताकि पौधों को निकालते समय जड़ों को कम नुकसान हो। रोपाई के तुरंत बाद सिंचाई करने

पौध की स्वस्थ बढ़वार

से पौधे जल्दी स्थापित हो जाते हैं। रोपाई से पहले पौधों की जड़ों को फफूंदनाशक दवाओं, जैसे बाविस्टिन या रिडोमिल के 0.1 प्रतिशत घोल से उपचारित करना लाभकारी होता है।

खेत पर तैयार पौधशाला

पौधशाला से पौध निकालते समय विशेष सावधानी बरतनी चाहिए, ताकि जड़ों को कम से कम क्षति पहुँचे। इसके लिए खुरपी की सहायता से पौध को सावधानीपूर्वक निकालना उचित रहता है।

पौध निकालने के बाद प्रतिरोपण का कार्य यथाशीघ्र पूरा कर लेना चाहिए। इस दौरान यह ध्यान रखना आवश्यक है कि पौध मुरझाने न पाए। इसके लिए पौध पर समय-समय पर पानी का हल्का छिड़काव करते रहना चाहिए या पौध की जड़ों को गीली मिट्टी से ढककर रखना चाहिए। प्रतिरोपण पूरा होने के बाद खेत में तुरंत हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए।

भाकृअनुप की मासिक लोकप्रिय पत्रिका
'खेती' मई, 2026 अंक के प्रमुख आकर्षण

- पोषण से भरपूर कुटकी का मूल्य संवर्धन
- लाभ से भरपूर मखाना सह मत्स्य पालन प्रणाली
- सतत कृषि में पशुधन की भूमिका
- दलहन प्रसंस्करण केन्द्रों से आय संवर्धन
- धान में सूत्रकृमियों का प्रबंधन
- पोषण से भरपूर माइक्रोग्रीन्स का उत्पादन
- कृषि में बढ़ता ड्रोन का महत्व
- मकई रेशम का प्रसंस्करण
- शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों हेतु एग्रीवोल्टाइक प्रणाली

संपर्क सूत्र: प्रभारी, व्यवसाय एकक, भाकृअनुप-कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, कैब-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012
दूरभाष: 25843657, www.icar.org.in

पर्वतीय क्षेत्रों में पॉलीहाउस में टमाटर की खेती

रेनू सनवाल[1], राहुल देव[2], एन के हेडाऊ[3], संथिया एस.[4]
और **अमित कुमार[5]**

टमाटर हमारे आहार में महत्वपूर्ण स्थान रखने वाली एक प्रमुख सब्जी है। यह पौष्टिकता से भरपूर तथा इसमें विटामिन सी, पोटेशियम, फोलेट और विभिन्न एंटीऑक्सीडेंट पाए जाते हैं, जो हृदय स्वास्थ्य को बेहतर बनाने, त्वचा की देखभाल करने और प्रतिरक्षा तंत्र को मजबूत करने में सहायक होते हैं। इन पौष्टिक गुणों के कारण टमाटर का सेवन स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी माना जाता है। सामान्यत: टमाटर की खेती खुले खेतों में की जाती है, किंतु पर्वतीय क्षेत्रों में खुले वातावरण में तापमान, वर्षा तथा कीट-रोगों के प्रभाव के कारण इसकी उपज और गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है। ऐसे में पॉलीहाउस तकनीक के अंतर्गत टमाटर की खेती एक प्रभावी विकल्प के रूप में उभरकर सामने आई है। पॉलीहाउस के नियंत्रित वातावरण में टमाटर की खेती करने से फसल की गुणवत्ता और उत्पादन दोनों में वृद्धि होती है।

पर्वतीय क्षेत्रों में पॉलीहाउस के माध्यम से टमाटर उत्पादन करने से किसानों को बेहतर गुणवत्ता वाली उपज प्राप्त होती है, जिसे बाजार में अधिक मूल्य पर बेचा जा सकता है। इससे किसानों की आय में काफी वृद्धि होने के साथ-साथ उन्हें स्थिर और नियमित आर्थिक लाभ भी प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त पॉलीहाउस तकनीक के उपयोग से पानी की खपत कम होती है तथा फसलों पर कीट और रोगों का प्रभाव भी अपेक्षाकृत कम पड़ता है, जिससे फसल प्रबंधन और सुरक्षा आसान हो जाती है।

इस प्रकार, पॉलीहाउस में टमाटर की खेती पर्वतीय क्षेत्रों के लिए एक लाभकारी कृषि विकल्प सिद्ध हो सकती है, जो न केवल खाद्य सुरक्षा को सुदृढ़ करती है बल्कि किसानों की आय बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

उपयुक्त जलवायु: टमाटर की खेती के लिए 25-27° से. तापमान उपयुक्त माना जाता है। इसके पौधों की अच्छी वृद्धि के लिए रात का तापमान लगभग 18° से. तथा दिन का तापमान 20-22° से. आदर्श रहता है। यदि तापमान 12° से. से कम या 30° से. से अधिक हो जाए, तो फलों के निर्माण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और उत्पादन में कमी आ सकती है। इसके अतिरिक्त पौधों के लिए लगभग 30,000-40,000 लक्स प्रकाश तथा 70-90 प्रतिशत आर्द्रता अनुकूल रहती है, जो पौधों की स्वस्थ वृद्धि और अच्छी गुणवत्ता के फल उत्पादन के लिए आवश्यक है।

भूमि की तैयारी: पॉलीहाउस में टमाटर की फसल सामान्यत: सीधे भूमि में लगाई जाती है, इसलिए भूमि की अच्छी तैयारी अत्यंत आवश्यक होती है। सबसे पहले मिट्टी को अच्छी तरह भुरभुरा बनाया जाता है ताकि जल निकास सुचारु रहे और पौधों की जड़ें आसानी से फैल सकें। इसके बाद 8-10 सें.मी. ऊँची क्यारियाँ तैयार की जाती हैं। क्यारी की चौड़ाई लगभग 1.0-1.25 मीटर तथा लंबाई पॉलीहाउस के आकार के अनुसार रखी जाती है। प्रत्येक क्यारी में दो पंक्तियां लगाई जाती हैं और उनके बीच सूक्ष्म सिंचाई (ड्रिप) प्रणाली स्थापित की जाती है, जिससे पानी का उचित वितरण हो सके और पौधों की वृद्धि बेहतर हो।

पौध तैयार करना और रोपाई: ग्रीनहाउस में पौध तैयार करना अधिक सुरक्षित माना जाता है, क्योंकि इससे रोग और कीटों के प्रवेश की आशंका कम हो जाती है। नर्सरी क्यारी की चौड़ाई लगभग 1 मीटर तथा ऊँचाई 15-20 सें.मी. रखी जाती है। इसमें गोबर की खाद या कम्पोस्ट मिलाकर बीजों को पंक्तियों में बोया जाता है।

मध्य पर्वतीय क्षेत्रों में टमाटर की नर्सरी सामान्यत: दिसंबर-जनवरी में तैयार की जाती है और रोपाई फरवरी के मध्य से मार्च के प्रारंभ तक की जाती है।

पौधों को सामान्यत: 50-70 सें.मी. पंक्ति से पंक्ति तथा 50-60 सें.मी. पौधे से पौधे की दूरी पर लगाया जाता है। प्रत्येक क्यारी में दो पंक्तियां लगाई जाती हैं और उनके बीच सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली लगाई जाती है।

टमाटर की दूसरी फसल ग्रीनहाउस में जुलाई या अगस्त में लगाई जा सकती है, जिससे वर्ष में दो बार अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार सही पौध तैयार करना और उचित रोपाई से अच्छी गुणवत्ता तथा अधिक उपज सुनिश्चित की जा सकती है।

[1]मुख्य तकनीकी अधिकारी, [3]प्रभागाध्यक्ष, [4]वैज्ञानिक, [5]वैज्ञानिक, भाकृअनुप-वि.प.कृ.अनु.सं., अल्मोड़ा; [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक, भाकृअनुप-राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, क्षेत्रीय स्टेशन, भवाली

उन्नत किस्म: पॉलीहाउस में टमाटर की खेती के लिए उच्च बढ़वार वाली संकर किस्में अधिक उपयुक्त मानी जाती हैं। ये किस्में तेज वृद्धि करती हैं, अधिक फल देती हैं और बेहतर गुणवत्ता के फल प्रदान करती हैं। इसलिए पॉलीहाउस में इन किस्मों का चयन किसानों को अधिक उत्पादन और बेहतर आर्थिक लाभ दिलाने में सहायक होता है।

पोषक तत्व प्रबंधन

ग्रीनहाउस में टमाटर की खेती में खुले खेतों की तुलना में अधिक उपज प्राप्त होती है, क्योंकि यहाँ पौधों को आदर्श जलवायु और नियंत्रित वातावरण उपलब्ध होता है। इसके कारण टमाटर की फसल को अधिक पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। उचित पोषक तत्व प्रबंधन के माध्यम से ही पौधों की अच्छी वृद्धि और अधिक उत्पादन सुनिश्चित किया जा सकता है।

ग्रीनहाउस में फसल की अवधि अपेक्षाकृत लंबी होती है, इसलिए धीमी गति से मुक्त होने वाले उर्वरकों का उपयोग अधिक प्रभावी माना जाता है। ऐसे उर्वरक पूरे मौसम में धीरे-धीरे आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध करवाते हैं, जिससे पौधों को लंबे समय तक पोषण मिलता रहता है।

उर्वरकों की मात्रा फसल की आवश्यकता, मिट्टी के प्रकार, वातावरण तथा फसल की अवधि पर निर्भर करती है। मध्य पर्वतीय क्षेत्रों में, जहाँ सामान्यत: खुले वातावरण में खेती की जाती है, उर्वरक मात्रा का प्रयोग किया जाता है-

- **गोबर की सड़ी हुई खाद:** 20 टन प्रति हैक्टर
- **नाइट्रोजन:** 100 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर
- **फॉस्फोरस:** 50 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर
- **पोटाश:** 50 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर

फॉस्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा रोपाई से पहले भूमि की तैयारी के समय दे दी जाती है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा खेत की तैयारी या क्यारी बनाते समय दी जाती है, जबकि शेष आधी मात्रा रोपाई के लगभग एक महीने बाद दी जाती है। इससे पौधों की वृद्धि संतुलित रहती है और उत्पादन में वृद्धि होती है।

कटाई-छंटाई: टमाटर की फसल में पौधों को संतुलित आकार देने तथा फलों की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। सामान्यत: टमाटर के पौधों को एक या दो तनों में प्रवर्धित किया जाता है। एक मुख्य तना रखने से पौधों का पोषण एक स्थान पर केंद्रित रहता है और उनकी ऊर्जा मुख्य तने तथा फलों की वृद्धि में लगती है। इस कारण ग्रीनहाउस में एक तना प्रणाली अधिक प्रभावी मानी जाती है।

लाभ

पॉलीहाउस तकनीक पर्वतीय क्षेत्रों में अधिक उपज और लाभ प्राप्त करने के लिए एक प्रभावी विकल्प है। इसके प्रमुख लाभ इस प्रकार हैं:

- **प्रतिकूल मौसम से सुरक्षा:** पॉलीहाउस में पौधे बारिश, ओलावृष्टि, तेज हवा और अत्यधिक तापमान से सुरक्षित रहते हैं, जिससे उनकी वृद्धि बेहतर होती है और उपज में वृद्धि होती है।
- **बेहतर गुणवत्ता:** पॉलीहाउस में उगाई गई फसलों पर कीट-रोगों का प्रभाव अपेक्षाकृत कम होता है, जिससे फसलें अधिक स्वस्थ और गुणवत्तायुक्त होती हैं।
- **वर्षभर उत्पादन:** पॉलीहाउस में नियंत्रित वातावरण होने के कारण मौसम की बाधाओं से बचकर पूरे वर्ष फसल उत्पादन संभव होता है।
- **पानी की बचत:** पॉलीहाउस में खुले खेतों की तुलना में पानी की खपत कम होती है, जिससे पर्वतीय क्षेत्रों में जल की कमी की समस्या को कम करने में मदद मिलती है।
- **उपज में वृद्धि:** सामान्य खेतों की अपेक्षा पॉलीहाउस में 3-4 गुना तक अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।
- **कीट-रोगों पर नियंत्रण:** पॉलीहाउस में रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग कम करना पड़ता है, जिससे उत्पादों की गुणवत्ता बेहतर होती है।
- **स्थिर आय और रोजगार:** पॉलीहाउस खेती से किसानों को स्थिर आय प्राप्त होती है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर भी बढ़ते हैं।

उन्नत तकनीक भरपूर उत्पादन

इसके अतिरिक्त दो तना प्रणाली भी उपयोगी होती है, क्योंकि इससे उपज और फल के आकार के बीच अच्छा संतुलन बना रहता है। लेकिन यदि पौधों में दो से अधिक शाखाएँ रहने दी जाएँ, तो वे अधिक पोषक तत्वों का उपयोग करती हैं, जिससे फलों का आकार छोटा हो सकता है और उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है।

नियमित कटाई-छंटाई से पौधों को पर्याप्त हवा और प्रकाश मिलता है, जिससे फलों का विकास बेहतर होता है और उनकी गुणवत्ता भी बढ़ती है। यह प्रक्रिया सामान्यत: प्रति सप्ताह की जानी चाहिए। इस दौरान पौधों की पार्श्व शाखाओं को हटा दिया जाता है, जिससे पौधे संतुलित रूप से बढ़ते हैं और फलों का आकार तथा गुणवत्ता बेहतर होती है। ग्रीनहाउस में नियंत्रित वातावरण के कारण यह प्रक्रिया और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है।

प्रवर्धन: पॉलीहाउस में टमाटर के पौधों को सहारा देने के लिए डोरी, तार या बाँस का उपयोग किया जाता है। डोरी को ग्रीनहाउस की छत से लटकाकर पौधों को धीरे-धीरे ऊपर की ओर बढ़ने के लिए सहारा दिया जाता है। इससे पौधे सीधे और मजबूत रहते हैं तथा फल जमीन के संपर्क में नहीं आते।

इस व्यवस्था से फलों को पर्याप्त हवा और प्रकाश मिलता है, जिससे उनका रंग, आकार और गुणवत्ता बेहतर होती है। साथ ही पौधों को इस प्रकार प्रवर्धित किया जाता है कि प्रति इकाई क्षेत्र में अधिक पौधे लगाए जा सकें और प्रकाश का बेहतर उपयोग हो सके।

सिंचाई: टमाटर की फसल के लिए पॉलीहाउस में सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली (ड्रिप सिंचाई) सबसे उपयुक्त मानी जाती है। इस प्रणाली के माध्यम से पानी सीधे पौधों की जड़ों तक सही मात्रा में पहुँचाया जाता है, जिससे पानी की बचत

होती है और पौधों को आवश्यक नमी मिलती रहती है।

पर्वतीय क्षेत्रों में, जहाँ ऊँचाई पर सिंचाई की व्यवस्था करनी होती है, वहाँ ऊँचाई पर बने जल टैंकों से भी ड्रिप सिंचाई की जा सकती है, जिससे अतिरिक्त ऊर्जा या बिजली की आवश्यकता कम पड़ती है। मध्य पर्वतीय क्षेत्रों में टमाटर की सिंचाई सामान्यत: निश्चित अंतराल पर, जैसे लगभग हर पाँच दिन में या आवश्यकता अनुसार की जाती है।

सिंचाई का उचित प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि अत्यधिक पानी देने से जड़ों में सड़न हो सकती है, जबकि पानी की कमी से पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है। इस प्रकार आवश्यकता के अनुसार संतुलित सिंचाई करने से पौधों की बेहतर वृद्धि होती है और उच्च गुणवत्ता वाले फल प्राप्त होते हैं।

समेकित नाशीजीव प्रबंधन: इसके अंतर्गत सस्य क्रियाओं, जैविक उपायों तथा रासायनिक नियंत्रण का संतुलित उपयोग करके फसलों में कीटों और रोगों का प्रभावी नियंत्रण किया जाता है। इससे फसल की सुरक्षा के साथ-साथ पर्यावरण पर भी कम प्रभाव पड़ता है।

रासायनिक नियंत्रण

- **बीज उपचार:** बुआई से पहले बीज का उपचार करना आवश्यक है। इसके लिए थीरम 75 डीएस या मैटलैक्सिल तथा थीरम को समान मात्रा में मिलाकर लगभग 2-3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचार किया जा सकता है। साथ ही 15-20 सें.मी. ऊँची उठी हुई क्यारियों की ऊपरी सतह में थीरम 75 डब्ल्यूएस या कैप्टॉन 50 डब्ल्यूपी को लगभग 4-5 ग्राम प्रति वर्ग मीटर की दर से मिलाया जा सकता है।
- **रोग के शुरुआती लक्षण पर:** यदि पौधों में रोग के प्रारंभिक लक्षण दिखाई दें, तो मैंकोजेब 2-2.5 ग्राम या मैंकोजेब + मैटलैक्सिल मिश्रण को लगभग 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। यह छिड़काव 10-15 दिनों के अंतराल पर 3-4 बार किया जा सकता है। आवश्यकता होने पर 6-8 दिनों के अंतराल पर भी छिड़काव किया जा सकता है। घोल में चिपकने वाला पदार्थ (जैसे सेन्डोविट या ट्रिटान) मिलाने से दवा का प्रभाव बेहतर होता है।
- **जीवाणु जनित उकठा:** कॉपर ऑक्सीक्लोराइड तथा स्ट्रेप्टोसाइक्लिन को पानी में घोलकर पौधों की जड़ों के पास सिंचाई करने से इस रोग के नियंत्रण में सहायता मिलती है।
- **चुरड़ा और माहूं का नियंत्रण:** इन कीटों के नियंत्रण के लिए उपयुक्त कीटनाशक का निर्धारित मात्रा में पानी के साथ घोल बनाकर पौधों पर छिड़काव किया जाता है।
- **फलबेधक सुंडी की रोकथाम:** इसके नियंत्रण के लिए उपयुक्त कीटनाशकों का निर्धारित मात्रा में छिड़काव किया जाता है, जिससे इस कीट का प्रकोप कम किया जा सकता है।
- **दवाओं का परिवर्तन:** कीटों में प्रतिरोधक क्षमता विकसित होने से रोकने के लिए दवाओं का उपयोग बदल-बदल कर करना चाहिए, ताकि उनका प्रभाव लंबे समय तक बना रहे।

पॉलीहाउस में टमाटर की खेती किसानों के लिए एक लाभदायक और टिकाऊ कृषि विकल्प सिद्ध हो सकती है। नियंत्रित वातावरण, उपयुक्त किस्मों का चयन, संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन, नियमित कटाई-छंटाई तथा उचित सिंचाई प्रबंधन के माध्यम से उच्च गुणवत्ता वाली सब्जियों का उत्पादन संभव है।

उन्नत तकनीकों के प्रयोग से पॉलीहाउस खेती में सामान्य खेती की तुलना में अधिक उपज और बेहतर आर्थिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार पॉलीहाउस में मौसमी तथा बेमौसमी सब्जियों की खेती से न केवल किसानों की उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है, बल्कि उनकी आय में भी उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकती है। साथ ही यह क्षेत्रीय कृषि विकास को भी प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

प्रमुख किस्में

- **वी.एल. टमाटर 4:** यह एक उन्नत संकर किस्म है, जो विशेष रूप से पॉलीहाउस में उगाने के लिए उपयुक्त मानी जाती है। इसके फल लाल रंग के तथा गोल आकार के होते हैं, जिनका औसत वजन लगभग 75 ग्राम होता है। पॉलीहाउस के नियंत्रित वातावरण में इस किस्म से लगभग 35-40 टन प्रति हैक्टर तक उपज प्राप्त की जा सकती है।
- **वी.एल. चेरी टमाटर 1:** इस किस्म के फल छोटे, गोल आकार के और चमकदार लाल रंग के होते हैं। इसका आकर्षक आकार और रंग इसे सलाद के लिए उपयुक्त बनाते हैं। नियंत्रित वातावरण, जैसे पॉलीहाउस में उगाने पर इस किस्म से लगभग 20-25 टन प्रति हैक्टर तक उपज प्राप्त की जा सकती है।
- **पालमपुर हाइब्रिड:** यह किस्म पॉलीहाउस तथा खुले खेत दोनों में अच्छी उपज देती है। सामान्य परिस्थितियों में इसकी उपज लगभग 25-30 टन प्रति हैक्टर होती है, जबकि नियंत्रित वातावरण जैसे पॉलीहाउस में उचित देखभाल के साथ यह 50-60 टन प्रति हैक्टर तक पहुँच सकती है।
- **हिमाचल लाल:** यह किस्म उच्च गुणवत्ता वाले फल देती है और इसकी उपज लगभग 25-30 टन प्रति हैक्टर तक हो सकती है। पॉलीहाउस या नियंत्रित वातावरण में इसकी उपज बढ़कर लगभग 40-50 टन प्रति हैक्टर तक पहुँच सकती है। इसके फल बाजार में अच्छी कीमत प्राप्त करते हैं।

सस्य क्रियाओं द्वारा नियंत्रण

- प्रतिरोधी या सहनशील किस्मों का चयन करें।
- उचित फसल चक्र अपनाएँ।
- कीट एवं रोगग्रस्त पौधों तथा फसल के अवशेषों को नष्ट करें।
- नियमित समय पर फसल में हवा का उचित आदान-प्रदान सुनिश्चित करें तथा आवश्यकता होने पर पौधों को सहारा दें।
- संतुलित मात्रा में उर्वरक और खादों का प्रयोग करें।
- फसल की रोपाई या बुआई समय पर करें।
- टमाटर की लगभग 16 पंक्तियों के बाद अफ्रीकी गेंदे की एक पंक्तियों लगाएँ, जिससे फल छेदक कीट का प्रकोप कम होता है।
- पौधशाला (नर्सरी) का स्थान प्रत्येक वर्ष बदलते रहें।

मूल्यवर्धित आंवला का टिकाऊ उत्पादन

शिवम कुमार राजपूत[1] और **सत्यभान**[2]

आंवला, प्रमुख फलों में से एक है और इसकी उत्पत्ति भारत में मानी जाती है। यह फल विभिन्न प्रकार की जलवायु और भौगोलिक परिस्थितियों में अच्छी तरह उगने की क्षमता रखता है। आकर्षक रंग, प्रचुर पोषक तत्व, मधुर स्वाद और सुगंध के कारण इसका विशेष महत्व है। आंवला की कई व्यावसायिक और उन्नत किस्में उपलब्ध हैं, जो इसे फल उत्पादन के लिए अत्यंत उपयोगी बनाती हैं। औषधीय गुणों से भरपूर होने के कारण भी इसका महत्व बहुत अधिक है। आंवला का वृक्ष प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता रखता है, इसलिए इसे ऊसर, बंजर और परती जैसी अनुपजाऊ भूमि में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। कठिन कृषि परिस्थितियों में भी कम देखभाल के साथ इसका उत्पादन संभव होने के कारण इसकी खेती दिन-प्रतिदिन लोकप्रिय होती जा रही है और इसे भविष्य का फल भी माना जाता है।

आंवला फल विटामिन-सी का एक प्रमुख स्रोत है। इसमें उपस्थित ल्यूकोएन्थोसाइनिन्स के कारण विटामिन-सी ऑक्सीकरण द्वारा आसानी से नष्ट नहीं होता, इसलिए सूखे और भंडारित फलों में भी विटामिन-सी पर्याप्त मात्रा में बना रहता है।

आंवला का ताजे फलों के रूप में उपयोग अपेक्षाकृत कम होता है, जबकि इसका अधिकतर उपयोग विभिन्न संरक्षित उत्पादों के निर्माण में किया जाता है। आंवला से अचार, जैम, कैंडी, मुरब्बा, चटनी, शरबत और लच्छे जैसे अनेक उत्पाद बनाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त आंवला त्रिफला और च्यवनप्राश जैसी आयुर्वेदिक औषधियों का भी प्रमुख घटक है।

[1]पीएचडी शोध छात्र (फल विज्ञान), भाकृअनुप-भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु, कर्नाटक; [2]पीएचडी शोध छात्र (फल विज्ञान), आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, अयोध्या, उत्तर प्रदेश

भूमि एवं जलवायु

आंवला को लगभग सभी प्रकार की मृदा में उगाया जा सकता है। यह लवणीय (लगभग 10 ईसीई) तथा क्षारीय (लगभग 45 ईएसपी) दोनों प्रकार की भूमि में भी अच्छी तरह बढ़ सकता है। हालांकि ऐसी भूमि, जिसकी निचली सतह में कंकड़ की कठोर तह हो या जहाँ जलस्तर अधिक ऊँचा हो, आंवला के वृक्षों की वृद्धि के लिए उपयुक्त नहीं होती। इसके अतिरिक्त ऊसर, बंजर और परती जैसी अनुपजाऊ भूमियों में भी आंवला का वृक्ष आसानी से उगाया जा सकता है।

आंवला मुख्यतः उष्ण जलवायु का वृक्ष है, लेकिन इसे उपोष्ण जलवायु में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इसके वृक्ष लू और पाले से सामान्यतः अधिक प्रभावित नहीं होते। यह लगभग 0 से 46 डिग्री सेल्सियस तक के तापमान को सहन करने की क्षमता रखता है। पुष्पण के समय गर्म और शुष्क वातावरण अधिक अनुकूल माना जाता है, जिससे फलन अच्छी तरह होता है।

किस्में

विगत वर्षों में नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, फैजाबाद (उत्तर प्रदेश) द्वारा आंवला की कई नई तथा अधिक

अगेती किस्में

नरेन्द्र आंवला-5: यह फैलावदार वृक्ष वाली अगेती किस्म है। इसके फल का वजन लगभग 45-50 ग्राम होता है तथा रंग हल्का पीला होता है। फल का गूदा रेशारहित होता है, इसलिए यह मुरब्बा बनाने के लिए उपयुक्त मानी जाती है। इस किस्म से प्रति पेड़ लगभग 132-140 किलोग्राम फल उत्पादन प्राप्त होता है।

नरेन्द्र आंवला-9: इस किस्म का चयन बनारसी किस्म से किया गया है। यह मुरब्बा तथा कैंडी बनाने के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

उत्पादन देने वाली किस्में विकसित की गई हैं, जिन्हें "नरेन्द्र आंवला" के नाम से जाना जाता है। इन किस्मों को मुख्यत: अगेती तथा मध्यम वर्गीय समूहों में रखा गया है। प्रमुख किस्मों का विवरण इस प्रकार है:

मध्यम वर्गीय किस्में

नरेन्द्र आंवला-4: इसके फल का वजन लगभग 30-32 ग्राम होता है तथा रंग हल्का पीला होता है। इसमें विटामिन-सी की मात्रा लगभग 545-546 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम होती है। यह अचार के लिए उपयुक्त किस्म है और प्रति पेड़ लगभग 150-160 किलोग्राम उत्पादन देती है।

नरेन्द्र आंवला-6: इस किस्म का वृक्ष कम फैलावदार होता है। इसके फल का वजन लगभग 35-40 ग्राम होता है तथा रंग हल्का पीला और चमकदार होता है। इसमें विटामिन-सी की मात्रा लगभग 395-398 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम होती है। यह मुरब्बा और कैंडी बनाने के लिए उपयुक्त है तथा इसका उत्पादन लगभग 140-150 किलोग्राम प्रति पेड़ होता है।

नरेन्द्र आंवला-7: इसका वृक्ष सीधी वृद्धि वाला होता है और तीसरे वर्ष से फल देना प्रारम्भ कर देता है। इसके फल का वजन लगभग 45-50 ग्राम होता है तथा रंग हल्का पीला होता है। इसमें विटामिन-सी की मात्रा लगभग 564-578 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम पाई जाती है। यह जूस, मुरब्बा और कैंडी बनाने के लिए उपयुक्त किस्म है तथा इसका उत्पादन लगभग 200-225 किलोग्राम प्रति पेड़ तक होता है।

नरेन्द्र आंवला-20: इसका वृक्ष फैलावदार तथा सीधी वृद्धि वाला होता है। इसके फल का वजन लगभग 55-60 ग्राम होता है तथा रंग पीला होता है। इसमें विटामिन-सी की मात्रा लगभग 545-576 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम होती है। यह अचार, मुरब्बा और कैंडी के लिए उपयुक्त है तथा प्रति पेड़ लगभग 150-160 किलोग्राम उत्पादन देता है।

नरेन्द्र आंवला-25: इसका वृक्ष फैलावदार तथा सीधी वृद्धि वाला होता है। इसके फल का वजन लगभग 45-50 ग्राम होता है और रंग चमकीला हरा-पीला होता है। इसमें विटामिन-सी की मात्रा लगभग 483-484 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम होती है। यह अचार, मुरब्बा और कैंडी बनाने के लिए उपयुक्त किस्म है तथा लगभग 150-160 किलोग्राम प्रति पेड़ उत्पादन देती है।

नरेन्द्र आंवला-26: इस किस्म का वृक्ष भी फैलावदार तथा सीधी वृद्धि वाला होता है। इसके फल का वजन लगभग 45-50 ग्राम होता है तथा रंग चमकीला हरा-पीला होता है। इसमें विटामिन-सी की मात्रा लगभग 483-484 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम होती है। यह अचार, मुरब्बा और कैंडी के लिए उपयुक्त है तथा लगभग 150-160 किलोग्राम प्रति पेड़ उत्पादन देती है।

पछेती किस्में

पछेती किस्में सामान्यत: मध्य दिसम्बर से मध्य जनवरी के बीच पककर तैयार होती हैं। इन किस्मों में चकैया प्रमुख रूप से उगाई जाती है।

चकैया: यह एक ओजस्वी तथा सीधी वृद्धि वाला वृक्ष है और पछेती किस्म के रूप में जानी जाती है। इस किस्म में फलों का उत्पादन अधिक होता है। इसके फलों का वजन लगभग 40-45 ग्राम होता है तथा फल हल्के चपटेपन के साथ गोल आकार के होते हैं। इनका रंग पीलेपन लिए हुए हरा होता है। इसमें विटामिन-सी की मात्रा लगभग 558-560 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम पाई जाती है।

नरेन्द्र आंवला-10

यह ओजस्वी तथा फैलने वाला वृक्ष है और अगेती किस्म के रूप में जाना जाता है। इसके फल का वजन लगभग 45-50 ग्राम होता है तथा फल का रंग गुलाबी होता है। इसमें विटामिन-सी की मात्रा लगभग 472-475 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम पाई जाती है। यह अचार बनाने के लिए उत्तम किस्म है तथा इसका उत्पादन लगभग 130-140 किलोग्राम प्रति पेड़ होता है।

फल में रेशा अधिक होने के कारण यह किस्म अचार बनाने के लिए विशेष रूप से उपयुक्त मानी जाती है। इसका उत्पादन लगभग 150-160 किलोग्राम प्रति पेड़ तक होता है।

अन्य किस्में

गोमा ऐश्वर्या: यह अधिक पैदावार देने वाली और व्यावसायिक खेती के लिए उपयुक्त किस्म मानी जाती है। इसके फल बड़े आकार के होते हैं और इनमें गूदा अधिक मात्रा में पाया जाता है, इसलिए यह प्रसंस्करण के लिए अच्छी होती है। इसमें विटामिन-सी (एस्कॉर्बिक एसिड), पॉलीफेनोल्स, कैरोटीन तथा विभिन्न खनिज तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं।

यह किस्म पाउडर, अचार और जूस बनाने के साथ-साथ आयुर्वेदिक उत्पाद जैसे त्रिफला और च्यवनप्राश के निर्माण में भी उपयोगी है। इसका वृक्ष मजबूत होता है और लगभग 48^0 सेल्सियस तक के उच्च तापमान को सहन कर सकता है, हालांकि यह पाले के प्रति कुछ संवेदनशील होता है।

उपरोक्त किस्मों के अतिरिक्त आगरा से विकसित बलवन्त आंवला, गुजरात के आनन्द से विकसित आनन्द-1, आनन्द-2 तथा आनन्द-3, तथा उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ से चयनित लक्ष्मी-52 भी अच्छी उपज देने वाली किस्में मानी जाती हैं।

प्रवर्धन

आंवला का प्रवर्धन सामान्यत: बीज से तैयार किए गए मूलवृन्त पर कली चढ़ाकर किया जाता है। बीज से तैयार पौधे जब लगभग 4 माह के हो जाते हैं, तब उन पर जून से अगस्त के बीच कलिकायन (बडिंग) किया जाता है। आंवला में व्यावसायिक रूप

सारणी: आंवला फसल में खाद एवं उर्वरक प्रयोग

पौधे की आयु	गोबर की खाद (कि.ग्रा.)	नाइट्रोजन (ग्रा.)	फॉस्फोरस (ग्रा.)	पोटाश (ग्रा.)
1 वर्ष	100	50	75	75
2 वर्ष से 9 वर्ष	20	200	100	150
10 वर्ष और अधिक	100	1000	500	750

कैंडी

फलों को अच्छी तरह पानी से धोने के बाद उन्हें खौलते पानी में 6-8 मिनट तक गर्म करते हैं। फिर ठंडा करने के बाद फलों से फांकें अलग कर लेते हैं। अब इन फांकों को 60° ब्रिक्स शर्करा तथा 0.7 प्रतिशत अम्लीय घोल में रातभर डुबोकर रखा जाता है, ताकि परासरण विधि द्वारा फांकों में शर्करा तथा अम्ल का प्रवेश हो सके। दूसरे दिन फांकों को घोल से निकालकर उसमें और शर्करा मिलाकर उसकी सांद्रता 70° ब्रिक्स तक कर लेते हैं। अब फांकों को पुन: रातभर भिगो देते हैं। अगले दिन शर्करा के घोल से निकालकर फांकों को गुनगुने पानी से धो लेते हैं, ताकि सतह पर लगी शर्करा घुल जाए। फिर फांकों को 60° सेल्सियस तापमान पर विद्युत चालित निर्जलीकरण यंत्र में 8-10 घंटे तक सुखाते हैं। इन सूखी फांकों में पानी की मात्रा लगभग 10 प्रतिशत होनी चाहिए। इस प्रकार तैयार फांके कैंडी कहलाती हैं। अब इन्हें पॉलीथीन की थैलियों या जार में भरकर भंडारित करते हैं।

स्वादिष्ट आंवला कैंडी

से पैबन्दी कलिकायन, रूपान्तरित छल्ला कलिकायन तथा ढाल कलिकायन की विधियाँ अपनाई जाती हैं। इनमें पैबन्दी कलिकायन विधि से सबसे अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं, इसलिए इसे अधिक उपयुक्त माना जाता है।

पहले वर्ष से 9 वर्षों तक प्रत्येक वर्ष गोबर की खाद में 10 किलोग्राम, नाइट्रोजन में 100 ग्राम, फॉस्फोरस में 50 ग्राम तथा पोटाश में 75 ग्राम की वृद्धि की जाती है। दसवें वर्ष के बाद यही मात्राएँ स्थिर कर दी जाती हैं।

सम्पूर्ण गोबर की खाद, नाइट्रोजन और पोटाश की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस की पूरी मात्रा जनवरी के अंत या फरवरी के प्रथम सप्ताह में फूल आने से पहले दी जाती है। शेष नाइट्रोजन और पोटाश की मात्रा अगस्त के अंतिम सप्ताह में दी जाती है। खाद देने के तुरंत बाद सिंचाई करना आवश्यक होता है, जिससे पोषक तत्व अच्छी तरह मिट्टी में मिलकर पौधों को उपलब्ध हो सकें।

सिंचाई

सामान्यत: आंवला के पौधों को शीत ऋतु में 10-15 दिनों के अंतराल पर तथा ग्रीष्म ऋतु में लगभग 7 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। फूल आने के समय (फरवरी-मार्च) में सिंचाई नहीं करनी चाहिए।

आंवला मुरब्बा

अप्रैल से जून तक सिंचाई का विशेष महत्व होता है। टपक सिंचाई (ड्रिप इरिगेशन) विधि अपनाने से आंवला में अच्छी उपज प्राप्त होती है तथा खरपतवार भी कम उगते हैं।

निराई-गुड़ाई

अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए समय-समय पर निराई-गुड़ाई करना आवश्यक होता है। थाले की सफाई के लिए अच्छी तरह गुड़ाई करके खरपतवार निकालते रहना चाहिए। थाले के चारों ओर पलवार (मल्च) बिछा देने से खरपतवार की वृद्धि कम होती है तथा मिट्टी की नमी भी सुरक्षित रहती है।

अंतरसस्य

प्रारम्भिक वर्षों में जब बाग से कोई आय नहीं होती और पौधे छोटे होते हैं, तब पंक्तियों के बीच की खाली जगह में पालक, टमाटर, लहसुन, मेथी, धनिया, मटर आदि फसलें उगाई जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त खाली स्थानों में कम समय में तैयार होने वाले फलदार पौधे जैसे करौंदा, फालसा तथा पपीता को भी पूरक फसल के रूप में लगाया जा सकता है।

तुड़ाई

आंवला के फल किस्मों के अनुसार नवम्बर से फरवरी तक पकते हैं। फलों की तुड़ाई उस समय करनी चाहिए जब फल के छिलके का रंग चमकीले हरापन लिए हुए पीला हो जाए। तुड़ाई हमेशा हाथ से करनी चाहिए ताकि फलों में खरोंच न आए।

उपज एवं आर्थिक लाभ

आंवला के लगभग 10-12 वर्ष पुराने पेड़ से औसतन 100-120 किलोग्राम फल प्राप्त होते हैं। इन फलों के विक्रय से लगभग 1 से 2 लाख रुपये तक की शुद्ध आय प्रति

हैक्टर प्रति वर्ष प्राप्त की जा सकती है।

भंडारण

कमरे के सामान्य तापमान पर आंवला के फलों को लगभग 7-9 दिनों तक सुरक्षित रखा जा सकता है। यदि फलों को 0-1.6° से. तापमान तथा 85-90 प्रतिशत सापेक्ष आर्द्रता पर रखा जाए, तो उनका भंडारण काल 18-20 दिनों तक बढ़ाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त आंवला के फलों को 15 प्रतिशत नमक के घोल में लगभग 75 दिनों तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

मूल्यवर्धित उत्पाद

स्क्वैश

स्क्वैश आंवले के जूस या गूदे से तैयार किया जाता है। इसके लिए 35-40 प्रतिशत जूस में लगभग 50 प्रतिशत चीनी, 1.1 प्रतिशत सिट्रिक अम्ल तथा 350 पी.पी.एम. सल्फर डाइऑक्साइड मिलाया जाता है। इस मिश्रण को हल्की आंच पर गर्म करके साफ और निर्जलीकृत बोतलों में भरकर भंडारित किया जाता है। उपयोग के समय एक भाग स्क्वैश को तीन भाग पानी में मिलाकर पिया जाता है।

आंवला की मीठी फांकें

यह आंवले से बनने वाला एक नया उत्पाद है, जिसमें आंवले के पौष्टिक गुण अधिक मात्रा में सुरक्षित रहते हैं। इसके लिए फलों को 6-8 मिनट तक खौलते पानी में रखा जाता है। इसके बाद उन्हें ठंडा करके फलों की फांकें अलग कर ली जाती हैं। फिर इन फांकों को 0.5 प्रतिशत खटास युक्त विभिन्न सांद्रता वाले (50, 60 और 70 ब्रिक्स) शर्करा के घोल में क्रमशः एक-एक घंटे के लिए रखा जाता है। अंत में शर्करा के घोल में अतिरिक्त चीनी मिलाकर इसे लगभग 70° ब्रिक्स तक सांद्रित करके उबाल लिया जाता है। इसके बाद फांकों को इस घोल में मिलाकर साफ जार में भरकर बंद कर दिया जाता है।

जूस

आंवले के छोटे-छोटे टुकड़ों को फिल्टर प्रेस द्वारा दबाकर जूस निकाला जाता है। इसके बाद जूस को लगभग 78° ब्रिक्स तक गर्म करके जीवाणुहीन कर दिया जाता है। तैयार जूस को साफ तथा निर्जमीकृत कांच की बोतलों में भर दिया जाता है। इस जूस को सुरक्षित रखने के लिए इसमें 500 पी.पी.एम. सल्फर डाइऑक्साइड या एक ग्राम पोटेशियम मेटाबाइसल्फाइट प्रति लीटर की दर से मिलाकर परिरक्षित किया जाता है।

डिब्बाबंद जार में आंवला मुरब्बा की पैकेजिंग

चूर्ण

आंवला की फांकों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर विद्युतचालित यंत्र में लगभग 60° सेल्सियस तापमान पर 8-10 घंटे तक सुखाया जाता है। इसके बाद उन्हें पीसकर चूर्ण बना लिया जाता है। आंवला चूर्ण को स्वादिष्ट बनाने के लिए प्रति 100 ग्राम चूर्ण में 8 ग्राम साधारण नमक, 16 ग्राम काला नमक, 15 ग्राम चीनी, 3 ग्राम सिट्रिक अम्ल, 2 ग्राम पिसी काली मिर्च, 1 ग्राम हींग, 1 ग्राम भुना हुआ पिसा जीरा, 1 ग्राम पिसी सौंफ, 1.5 ग्राम सोंठ तथा 0.5 ग्राम अजवायन मिलाई जाती है। यदि अजवायन उपलब्ध न हो तो 2-5 ग्राम पिसी हुई पुदीने की पत्तियाँ भी मिलाई जा सकती हैं। तैयार चूर्ण को सूखे जार में वायुरुद्ध अवस्था में भंडारित किया जाता है।

अन्य उपयोग

आंवला एक तीव्र शीतलतादायक, मूत्रवर्धक तथा मृदु रेचक फल माना जाता है। यदि एक चम्मच आंवले का रस प्रतिदिन शहद के साथ मिलाकर सेवन किया जाए, तो इससे कई प्रकार के रोगों और विकारों में लाभ मिल सकता है। यह क्षय रोग, दमा, रक्तस्राव, स्कर्वी, मधुमेह, रक्त की कमी, स्मरण शक्ति की कमजोरी, कैंसर, अवसाद तथा अन्य मस्तिष्क संबंधी विकारों में सहायक माना जाता है। इसके अतिरिक्त यह इन्फ्लुएंजा, सर्दी-जुकाम, समय से पहले बुढ़ापा आने, बालों के झड़ने तथा बालों के समय से पहले सफेद होने से बचाने में भी उपयोगी माना जाता है।

अक्सर देखा गया है कि यदि एक चम्मच ताजे आंवले का रस एक कप करेले के रस में मिलाकर दो महीने तक प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन किया जाए, तो शरीर में प्राकृतिक इंसुलिन का स्राव बढ़ने में सहायता मिलती है। इस प्रकार यह मधुमेह रोग में रक्त में शर्करा के स्तर को नियंत्रित करने में सहायक होता है और शरीर को स्वस्थ रखने में मदद करता है। इसके साथ ही यह रक्त की कमी, सामान्य कमजोरी तथा अन्य कई प्रकार की शारीरिक समस्याओं से राहत दिलाने में भी सहायक माना जाता है।

मुरब्बा

बाजार में उपलब्ध आंवले के मूल्यवर्धित उत्पादों में मुरब्बा एक प्रमुख उत्पाद है। इसे बनाने के कई तरीके प्रचलित हैं। पारंपरिक विधि में मुरब्बा बनाने के लिए आंवले के फलों को गोदकर उनकी फांकें बनाई जाती हैं और उन्हें 2-8 प्रतिशत नमक के घोल या फिटकरी के पानी में क्रमशः एक-एक दिन तक रखा जाता है। इससे फलों का कसैलापन दूर हो जाता है।

इसके बाद फलों को अच्छी तरह धोकर उनमें बराबर मात्रा में चीनी मिलाकर एक रात के लिए रख दिया जाता है। अगले दिन चीनी के घोल को लगभग 70° ब्रिक्स तक सांद्रित किया जाता है और उसमें फलों को डुबो दिया जाता है। इस प्रक्रिया को लगभग 3 से 5 बार दोहराया जाता है, जिससे फलों में चीनी का घोल अच्छी तरह समा जाता है।

अंत में तैयार मुरब्बे को साफ-सुथरे जार में भरकर लगभग 70-72° ब्रिक्स वाले शर्करा घोल के साथ बंद करके सुरक्षित रख दिया जाता है।

मशरूम से भरपूर पोषण

देबजीत शर्मा और **धर्मेश गुप्ता**

मशरूम वर्तमान समय में तेजी से एक सुपरफूड के रूप में उभर रहा है। यह एक प्रकार का मैक्रो कवक है, जिसे उसके आकर्षक स्वाद, उच्च पोषण मूल्य, विविध कार्यात्मक लाभों तथा नियंत्रित परिस्थितियों में आसानी से की जा सकने वाली खेती के कारण कई सदियों से मनुष्य द्वारा उगाया और खाया जाता रहा है। वैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रकार के मशरूमों पर व्यापक शोध कर उनके संभावित औषधीय गुणों का अध्ययन किया है। इन अध्ययनों से यह सिद्ध हुआ है कि मशरूम में अनेक जैव सक्रिय (बायोएक्टिव) यौगिक पाए जाते हैं, जो स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होते हैं। औषधीय गुणों के साथ-साथ मशरूम अपने उच्च पोषण मूल्य के कारण भी हमारे आहार में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इनमें प्रोटीन की मात्रा अधिक तथा वसा और ऊर्जा का स्तर अपेक्षाकृत कम होता है, जिससे ये स्वास्थ्यवर्धक और संतुलित आहार का एक महत्वपूर्ण घटक बन जाते हैं।

प्रदूषण और प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन से प्रभावित इस आधुनिक युग में आहार की गुणवत्ता में काफी कमी आई है, जिसके कारण आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति करना कठिन हो गया है। ऐसे समय में मशरूम एक उत्तम और पौष्टिक विकल्प के रूप में उभरकर सामने आया है। मशरूम प्रोटीन, विटामिन तथा विभिन्न खनिजों से भरपूर होते हैं, जो मानव शरीर की दैनिक पोषण आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायक होते हैं।

मशरूम के अनेक स्वास्थ्य लाभ भी हैं। सामान्यत: सबसे अधिक उगाई जाने वाली

पादप रोग विज्ञान विभाग, डॉ. वाई. एस. परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी, सोलन, हिमाचल प्रदेश

पोषक गुणों से भरपूर

मशरूम पोषण की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण खाद्य उत्पाद है। जब मशरूम के फलन पिंडों का सूखे भार के आधार पर विश्लेषण किया जाता है, तो उनमें सामान्यत: 50-65 प्रतिशत तक कार्बोहाइड्रेट पाए जाते हैं। इन कार्बोहाइड्रेट में विभिन्न प्रकार की शर्कराएँ शामिल होती हैं, जैसे मोनोसेकेराइड, डेरिवेटिव तथा ओलिगोसेकेराइड। विशेष रूप से इनमें कुछ मादक शर्कराएँ भी पाई जाती हैं, जैसे मैनिटोल और ट्रेहलोज। मशरूम प्रोटीन का भी अच्छा स्रोत हैं साथ ही सभी आवश्यक अमीनो अम्ल पाए जाते हैं। इनमें ग्लूटामिक अम्ल, एस्पार्टिक अम्ल तथा आर्जिनिन अधिक मात्रा में उपस्थित होते हैं। इसके अतिरिक्त मशरूम में असंतृप्त वसीय अम्ल भी पाए जाते हैं, जबकि कुल लिपिड (कच्ची वसा) की मात्रा लगभग 20-30 ग्राम प्रति किलोग्राम शुष्क पदार्थ होती है। मशरूम विटामिनों के भी महत्वपूर्ण स्रोत हैं, विशेष रूप से बी-कॉम्प्लेक्स समूह तथा विटामिन डी आदि। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि मशरूम ऐसा एकमात्र गैर-पशु आधारित खाद्य उत्पाद है, जिसमें प्राकृतिक रूप से विटामिन डी पाया जाता है। इसके अलावा मशरूम में पोटेशियम, कैल्शियम, फॉस्फोरस और मैग्नीशियम जैसे आवश्यक खनिज भी प्रचुर मात्रा में होते हैं। वहीं सोडियम की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है, जिससे यह उच्च रक्तचाप से ग्रसित व्यक्तियों के लिए भी एक उपयुक्त आहार विकल्प माना जाता है।

मशरूम प्रजातियों को दो प्रमुख समूहों में वर्गीकृत किया जाता है- खाद्य मशरूम और औषधीय मशरूम।

खाद्य मशरूमों में प्लुरोटस ओस्ट्रेटस, लेंटिनुला एडोड्स, एगारिकस बिस्पोरस, फ्लेमुलिना वेलुटाइप्स तथा ऑरिक्यूलरिया ऑरिक्युला जैसी प्रजातियाँ शामिल हैं। वहीं औषधीय मशरूमों में गैनोडर्मा ल्यूसिडम, कॉर्डिसेप्स साइनेंसिस आदि प्रमुख हैं।

मशरूम न्यूट्रास्यूटिकल्स के समृद्ध स्रोत माने जाते हैं। इनमें पाए जाने वाले जैव-सक्रिय यौगिक एंटीऑक्सीडेंट, एंटीट्यूमर तथा रोगाणुरोधी गुणों से युक्त होते हैं, जो मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी माने जाते हैं।

रिशि (गैनोडर्मा ल्यूसिडम) मशरूम

मशरूम के औषधीय महत्व

मशरूम उच्च आहार रेशा और कम वसा की मात्रा के कारण एक महत्वपूर्ण कार्यात्मक खाद्य उत्पाद के रूप में कार्य करते हैं। इनमें विटामिन, खनिज और उच्च गुणवत्ता वाला प्रोटीन प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

मशरूम में अनेक बायोएक्टिव यौगिक पाए जाते हैं जिनमें पौष्टिक गुण होते हैं। आज जंगली तथा खेती किए गए दोनों प्रकार के मशरूमों का उपयोग उनके पोषण और औषधीय लाभों के कारण किया जा रहा है। मशरूम में उपस्थित पोषक तत्व उन्हें सूजनरोधी, ट्यूमररोधी तथा एंटीऑक्सीडेंट गुण प्रदान करते हैं। इनमें पाए जाने वाले प्रमुख पौष्टिक घटकों में β-ग्लूकेन, आहार फाइबर, टरपीन, पेप्टाइड्स, ग्लाइकोप्रोटीन, खनिज, असंतृप्त वसीय अम्ल तथा एंटीऑक्सीडेंट यौगिक जैसे फेनोलिक यौगिक, टोकोफेरोल और एस्कॉर्बिक अम्ल आादि शामिल हैं।

कई मशरूमों में बी-अमिनो ब्यूटिरिक अम्ल और ऑर्निथिन जैसे विशेष अमीनो अम्ल भी पाए जाते हैं, जो शारीरिक क्रियाओं में भूमिका निभाते हैं। इसके अतिरिक्त, मशरूम में महत्वपूर्ण पाया जाने वाला लिनोलिक अम्ल कैंसर कोशिकाओं की वृद्धि को कम करने में सहायक पाया गया है। यह ट्यूमर कोशिकाओं के प्रसार को धीमा करने में भी योगदान देता है।

ताजे मशरूम में घुलनशील और अघुलनशील आहार रेशे की उपस्थिति के कारण इनके नियमित सेवन से कुल कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने में सहायता मिलती है, जिससे हृदय संबंधी रोगों के प्रबंधन में भी लाभ मिलता है।

विभिन्न उत्पादित और जंगली मशरूमों पर किए गए शोध से यह भी ज्ञात हुआ है कि एगारिकस बिस्पोरस में कच्चे प्रोटीन की मात्रा अच्छी होती है, जबकि जंगली मशरूम बोलेटस एडुलिस में कार्बोहाइड्रेट और β-टोकोफेरॉल पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। इसी प्रकार एगारिकस बिस्पोरस, एगारिकस सिल्वेटिकस, कैलोसाइबे गैंबोसा और कैंथरेलस सिबेरियस में फिनोल, फ्लेवोनोइड्स, एस्कॉर्बिक अम्ल, β-कैरोटीन तथा लाइकोपीन जैसे एंटीऑक्सीडेंट यौगिक पाए जाते हैं।

पौष्टिक गुणों से भरपूर मशरूम

पोषणकारी उत्पाद

मशरूम से निर्मित उत्पादों का उपयोग न केवल स्वादिष्ट होता है, बल्कि इनका न्यूट्रास्यूटिकल महत्व भी बहुत अधिक होता है। यहाँ कुछ मशरूम से निर्मित उत्पादों के बारे में बताया गया है, जिनमें न्यूट्रास्यूटिकल गुणों का उच्च स्तर पाया जाता है।

- **मशरूम सॉस:** मशरूम सॉस एक पसंदीदा व्यंजन है जो स्वादिष्ट होने के साथ-साथ न्यूट्रास्यूटिकल लाभों से भी भरपूर होता है। मशरूम में विटामिन, खनिज और एंटीऑक्सीडेंट की अच्छी मात्रा होती है, जो सॉस को स्वास्थ्यप्रद बनाते हैं।
- **मशरूम सूप:** मशरूम सूप एक अन्य लोकप्रिय उत्पाद है जो स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद होता है। इसमें मशरूम के पोषक तत्वों का उच्च स्तर होता है, जो प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बनाने में मदद करता है।
- **मशरूम क्रिस्पीज:** मशरूम से बने क्रिस्पीज एक स्वास्थ्यप्रद विकल्प हैं जिन्हें स्नैक्स के रूप में खाया जा सकता है। इनमें प्रोटीन, विटामिन और खनिजों की अच्छी मात्रा होती है, जो शरीर को ऊर्जा प्रदान करते हैं और रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं।
- **मशरूम चिप्स:** मशरूम से बने चिप्स भी एक स्वास्थ्यप्रद विकल्प हैं जो विभिन्न रोगों से लड़ने की क्षमता को बढ़ाते हैं। ये चिप्स विटामिन, खनिज और एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर होते हैं, जो शरीर को सुदृढ़ बनाते हैं और उसे संतुलित रखने में मदद करते हैं।

इन उत्पादों को नियमित रूप से अपने आहार में शामिल करने से स्वस्थ जीवनशैली को बढ़ावा मिलता है और रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।

मशरूम सेलेनियम जैसे खनिजों के भी अच्छे स्रोत होते हैं, जो शरीर में ऑक्सीडेटिव तनाव को कम करने में सहायक होते हैं। विशेष रूप से बोलेटस एडुलिस में सेलेनियम की मात्रा अधिक पाई गई है। इसके अतिरिक्त, शिटाके तथा प्लुरोटस जैसे मशरूमों के सूखे पाउडर के सेवन से यकृत में आयरन स्तर तथा रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा बढ़ने में भी सहायता मिलने के संकेत मिले हैं।

जैव सक्रिय न्यूट्रास्यूटिकल यौगिक

मशरूम में अनेक जैव-सक्रिय यौगिक पाए जाते हैं जो मानव स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होते हैं। मशरूम में उपस्थित बी-ग्लूकन जन्मजात प्रतिरक्षा को सक्रिय करके शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बनाते हैं। इसके अतिरिक्त मशरूम में पाया जाने वाला विटामिन बी5 तंत्रिका तंत्र के विकास और उसके सुचारु कार्य के लिए आवश्यक माना जाता है।

मशरूम की कुछ प्रजातियों में औषधीय गुण भी पाए जाते हैं। उदाहरण के लिए एगारिकस बिस्पोरस से प्राप्त पॉलीसेकेराइड मानव स्तन कैंसर के विरुद्ध उत्कृष्ट निरोधात्मक प्रभाव दिखाते हैं। इसी प्रकार एगारिकस ब्लेजी में पाए जाने वाले प्रोटीओग्लाइकैंस मजबूत इम्यूनोमॉड्यूलेटरी क्षमता रखते हैं, जो डेंड्राइटिक कोशिकाओं की परिपक्वता को बढ़ाकर हानिकारक रोगों और प्रतिरक्षा-कमी से संबंधित विकारों की रोकथाम तथा उपचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

ढींगरी मशरूम

मशरूम में कई प्रकार के बायोएक्टिव पेप्टाइड्स और प्रोटीन भी पाए जाते हैं, जैसे लेक्टिन, फंगल इम्यूनोमॉड्यूलेटरी प्रोटीन, राइबोसोम निष्क्रिय करने वाले प्रोटीन, रोगाणुरोधी प्रोटीन, राइबोन्यूक्लिएस और लैकेसेस। ये सभी यौगिक औषधीय दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं और औषधीय क्षमता के कारण स्वास्थ्य के लिए लाभकारी माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न मशरूम प्रजातियों से प्राप्त फेनोलिक यौगिक, टोकोफेरॉल, एस्कॉर्बिक एसिड और कैरोटेनॉयड्स भी प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बनाने में सहायक होते हैं। इन यौगिकों में एंटी वायरल, एंटी हाइपरकोलेस्ट्रोलेमिक और एंटी एंटीजेनरस गुण पाए जाते हैं, जो कीमोथेरेपी और रेडियोथेरेपी के हानिकारक प्रभावों को कम करने में भी सहायक हो सकते हैं।

गुणकारी लॉयन मेन मशरूम

इस प्रकार मशरूम का न्यूट्रास्यूटिकल महत्व मानव स्वास्थ्य और समग्र कल्याण के लिए अत्यंत उपयोगी माना जाता है। इसे नियमित रूप से आहार में शामिल करने से शरीर को आवश्यक पोषक तत्व प्राप्त होते हैं और रोग प्रतिरोधक क्षमता में भी वृद्धि होती है।

वर्तमान समय में मशरूम को अगली पीढ़ी के न्यूट्रास्यूटिकल खाद्य उत्पादों के रूप में देखा जा रहा है, क्योंकि इनमें अनेक प्रकार के जैव-सक्रिय यौगिक पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं।

मशरूम से प्राप्त विभिन्न बायोएक्टिव न्यूट्रास्यूटिकल यौगिकों को उनकी उच्च पोषण गुणवत्ता के कारण कार्यात्मक खाद्य उत्पादों के निर्माण में प्रभावी घटकों के रूप में उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार मशरूम न केवल एक पौष्टिक खाद्य उत्पाद है, बल्कि स्वास्थ्य संवर्धन और रोगों की रोकथाम के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है।

गुणों से भरपूर माइक्रोग्रीन्स का उत्पादन

स्नेहा राठौर[1] और **राज नारायण**[2]

माइक्रोग्रीन्स वे पौधे होते हैं जिन्हें बीज अंकुरण के लगभग 7 से 21 दिनों के भीतर काट लिया जाता है, जब इनके बीजपत्र पूरी तरह विकसित हो जाते हैं और कई बार पहला स्वस्थ पत्ता भी निकलने लगता है। आकार में छोटे होने के बावजूद इनमें स्वाद, रंग और पोषक तत्वों की मात्रा अत्यधिक होती है, इसलिए इन्हें सुपरफूड की श्रेणी में शामिल किया जाता है। माइक्रोग्रीन्स को कम पानी, कम स्थान और कम लागत में आसानी से उगाया जा सकता है, जिससे ये शहरी खेती के लिए अत्यंत उपयुक्त माने जाते हैं। इनमें विटामिन, खनिज और एंटीऑक्सीडेंट प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, जो मानव स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होते हैं। इसी कारण आधुनिक पोषण विज्ञान में इनका महत्व लगातार बढ़ रहा है। इस प्रकार पोषण, स्वास्थ्य और उद्यमिता तीनों ही क्षेत्रों में माइक्रोग्रीन्स अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं और भविष्य में टिकाऊ कृषि तथा पोषण सुरक्षा के लिए एक महत्वपूर्ण विकल्प के रूप में उभर रहे हैं।

माइक्रोग्रीन्स हाल के वर्षों में विश्वभर में एक उच्च मूल्य फसल के रूप में तेजी से लोकप्रिय हुए हैं और इन्हें आज "सुपरफूड" की श्रेणी में भी माना जाता है। ये छोटे पौधे बीज अंकुरण के लगभग 7 से 21 दिनों के भीतर कटाई योग्य हो जाते हैं।

आकार में छोटे होने के बावजूद इनमें विटामिन ए, सी, ई और के के साथ-साथ लौह, जिंक, मैग्नीशियम जैसे खनिज, एंटीऑक्सीडेंट तथा कई जैव सक्रिय यौगिक सामान्य सब्जियों की तुलना में अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। ये पोषक तत्व शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बनाने, हृदय स्वास्थ्य को बेहतर करने तथा सूजन रोधी प्रभाव प्रदान करने में सहायक होते हैं।

उत्पादन की दृष्टि से माइक्रोग्रीन्स कम स्थान, कम समय और अपेक्षाकृत कम लागत में अधिक लाभ देने वाली फसल मानी जाती है। इन्हें कोकोपीट, वर्मीक्यूलाइट, जूट मैट, नारियल रेशा या स्वच्छ मिट्टी जैसे माध्यमों में आसानी से उगाया जा सकता है।

आधुनिक तकनीकों जैसे नियंत्रित वातावरण, हाइड्रोपोनिक्स और ऊर्ध्वाधर खेती की सहायता से पूरे वर्ष उच्च गुणवत्ता वाली उपज प्राप्त की जा सकती है। माइक्रोग्रीन्स के सफल उत्पादन के लिए उचित नमी, उपयुक्त

आय वृद्धि

वर्तमान समय में बाजार में माइक्रोग्रीन्स की मांग तेजी से बढ़ रही है, विशेषकर शहरी उपभोक्ताओं, रेस्तराँ, पोषण विशेषज्ञों और स्वास्थ्य के प्रति जागरूक लोगों के बीच। कम समय में तैयार होने, उच्च बाजार मूल्य प्राप्त होने और कम परिवहन लागत के कारण माइक्रोग्रीन्स कृषि उद्यमिता के लिए एक आकर्षक विकल्प बन गए हैं। इस प्रकार माइक्रोग्रीन्स का उत्पादन भविष्य की टिकाऊ, पोषण समृद्ध और लाभकारी शहरी कृषि का एक संभावनाशील मॉडल माना जा रहा है, जो पोषण सुरक्षा और किसानों की आय वृद्धि दोनों में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

[1]विद्यावाचस्पति छात्र, सब्जी विज्ञान, कृषि महाविद्यालय, जोधपुर - 342 304; [2]प्रधान वैज्ञानिक एवं विभागाध्यक्ष, केंद्रीय द्वीप कृषि अनुसंधान संस्थान, अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह

उत्पादन विधि

माइक्रोग्रीन्स उगाना एक सरल और कम समय लेने वाली प्रक्रिया है। सबसे पहले उथली ट्रे में कोकोपीट या अन्य चयनित माध्यम को समान रूप से फैलाकर उसमें हल्की नमी प्रदान की जाती है। इसके बाद बीजों को उचित घनत्व के साथ सतह पर समान रूप से बिखेरा जाता है और हल्के से दबाकर सेट कर दिया जाता है। इसके पश्चात ट्रे को 2 से 3 दिनों तक अंधेरे स्थान पर रखा जाता है, जिससे अंकुरण तेजी से होता है। जब अंकुर निकल आते हैं, तब ट्रे को प्रकाश में या कृत्रिम प्रकाश के नीचे रखा जाता है। पौधों को प्रतिदिन हल्के स्प्रे के रूप में पानी दिया जाता है ताकि अत्यधिक नमी न हो। सामान्यत: 7 से 15 दिनों के भीतर माइक्रोग्रीन्स पूरी तरह विकसित होकर कटाई के लिए तैयार हो जाते हैं।

अल्प अवधि में तैयार हरित फसल

तापमान, स्वच्छता और उच्च गुणवत्ता वाले बीज का चयन अत्यंत महत्वपूर्ण होता है।

माइक्रोग्रीन्स एवं स्प्राउट्स

माइक्रोग्रीन्स और स्प्राउट्स दोनों ही पोषक खाद्य उत्पाद हैं, लेकिन इनके उत्पादन की विधि, विकास अवधि और गुणधर्मों में स्पष्ट अंतर पाया जाता है। स्प्राउट्स सामान्यत: 2 से 4 दिनों के भीतर केवल पानी की सहायता से उगाए जाते हैं और इनमें बीज, जड़ तथा प्रारंभिक तना शामिल होते हैं। दूसरी ओर, माइक्रोग्रीन्स को तैयार होने में लगभग 7 से 21 दिनों का समय लगता है। इस अवस्था में इनके बीजपत्र तथा प्रारंभिक सच्ची पत्तियाँ विकसित हो जाती हैं।

माइक्रोग्रीन्स में विटामिन, एंटीऑक्सीडेंट और रंगद्रव्य अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में पाए जाते हैं, जिससे इनका पोषण मूल्य अधिक माना जाता है। स्वाद की दृष्टि से भी माइक्रोग्रीन्स अधिक गहराई और विविधता प्रदान करते हैं, जबकि स्प्राउट्स का स्वाद अपेक्षाकृत हल्का होता है। इस प्रकार पोषण, स्वाद और प्रस्तुति के आधार पर माइक्रोग्रीन्स को स्प्राउट्स की तुलना में अधिक उन्नत और आकर्षक विकल्प माना जाता है।

प्रमुख माइक्रोग्रीन फसलें

माइक्रोग्रीन्स के रूप में कई प्रकार की फसलें अत्यंत लोकप्रिय हैं, जिनमें ब्रोकोली, सरसों, मूली, चुकंदर, सूरजमुखी, धनिया, मेथी और तुलसी प्रमुख हैं। ब्रोकोली माइक्रोग्रीन्स अपनी उच्च एंटीऑक्सीडेंट मात्रा के कारण सबसे अधिक पसंद किए जाते हैं, जबकि सूरजमुखी और मूली माइक्रोग्रीन्स अपने कुरकुरेपन और हल्के तीखे स्वाद के कारण सलादों में व्यापक रूप से उपयोग किए जाते हैं।

चुकंदर माइक्रोग्रीन्स का चमकीला लाल रंग व्यंजनों की आकर्षक प्रस्तुति को बढ़ाता है। वहीं धनिया और तुलसी माइक्रोग्रीन्स अपनी विशिष्ट सुगंध और स्वाद के कारण गार्निशिंग में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन विविध विकल्पों के कारण माइक्रोग्रीन्स स्वाद, पोषण और सौंदर्य तीनों दृष्टियों से उत्कृष्ट माने जाते हैं।

उत्पादन माध्यम

माइक्रोग्रीन्स के गुणवत्तापूर्ण उत्पादन के लिए स्वच्छ और उत्तम सामग्री का चयन अत्यंत आवश्यक है। इन्हें उगाने के लिए कोकोपीट, वर्मीक्यूलाइट, जूट मैट तथा नारियल रेशा जैसे हल्के और रोगमुक्त माध्यम आदर्श माने जाते हैं। उपयोग किए जाने वाले बीज उच्च अंकुरण क्षमता वाले, शुद्ध तथा बिना रासायनिक उपचार के होने चाहिए। उत्पादन के लिए उथली प्लास्टिक ट्रे, छिद्रयुक्त ट्रे या बायोडिग्रेडेबल ट्रे उपयुक्त होती हैं। इसके अतिरिक्त पानी देने के लिए स्प्रे बोतल, उचित प्रकाश स्रोत तथा स्वच्छ वातावरण माइक्रोग्रीन्स की वृद्धि के लिए आवश्यक होते हैं। उत्तम सामग्री के उपयोग से पौधों की वृद्धि दर, रंग, स्वाद और कुल गुणवत्ता में काफी सुधार होता है।

आर्थिक महत्व

माइक्रोग्रीन्स का उत्पादन कम समय, कम लागत और कम स्थान में अधिक लाभ प्रदान करने वाली खेती के रूप में उभर रहा है। यह फसल बहुत जल्दी तैयार हो जाती है और बाजार में इसका मूल्य भी अपेक्षाकृत अधिक मिलता है, जिससे किसानों के लिए यह एक आकर्षक व्यवसाय बनता जा रहा है। स्वस्थ और जैविक आहार की बढ़ती मांग के साथ माइक्रोग्रीन्स का बाजार भी लगातार विस्तार कर रहा है, जिससे यह कृषि क्षेत्र में एक उभरता हुआ आर्थिक अवसर बन गया है।

स्वास्थ्य लाभ

माइक्रोग्रीन्स आकार में छोटे होने के बावजूद पोषण की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध होते हैं। इनमें ए, सी, ई, के तथा बी-कॉम्प्लेक्स विटामिन पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। इसके साथ ही कैल्शियम, आयरन, मैग्नीशियम, पोटेशियम और जिंक जैसे आवश्यक खनिज भी इनमें मौजूद होते हैं, जो इन्हें अत्यधिक पौष्टिक बनाते हैं। माइक्रोग्रीन्स में उच्च स्तर के एंटीऑक्सीडेंट और फाइटोकेमिकल्स पाए जाते हैं, जो शरीर को मुक्त कणों से होने वाले नुकसान से बचाते हैं और कैंसर, हृदय रोग तथा सूजन जैसी समस्याओं के जोखिम को कम करने में सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त माइक्रोग्रीन्स ऊर्जा बढ़ाने, प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करने तथा पाचन क्रिया को बेहतर बनाने में भी मदद करते हैं। इस प्रकार माइक्रोग्रीन्स ताजा, पौष्टिक और स्वास्थ्यवर्धक आहार का एक उत्कृष्ट स्रोत माने जाते हैं।

पर्यावरणीय कारक

माइक्रोग्रीन्स का सफल उत्पादन मुख्यत: पर्यावरणीय परिस्थितियों पर निर्भर करता है। पर्याप्त प्रकाश पौधों में प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया को सक्रिय करता है, जिससे क्लोरोफिल का स्तर बढ़ता है और पत्तियाँ अधिक हरी तथा पोषक बनती हैं। प्रकाश की तीव्रता और अवधि पौधों के रंग, ऊँचाई और वृद्धि दर को प्रभावित करती हैं। सामान्यत: 20 से 25° से. तापमान माइक्रोग्रीन्स के विकास के लिए उपयुक्त माना जाता है, जबकि अत्यधिक गर्मी या ठंड पौधों की वृद्धि को धीमा कर सकती है। इसके अतिरिक्त नमी भी अत्यंत महत्वपूर्ण कारक है। इसके साथ ही माध्यम में संतुलित नमी आवश्यक होती है, क्योंकि अधिक नमी फफूंदी के विकास को बढ़ा सकती है, जबकि कम नमी अंकुरण को प्रभावित करती है। इन सभी कारकों का उचित प्रबंधन माइक्रोग्रीन्स की गुणवत्ता, स्वाद और पोषक मूल्य को बेहतर बनाता है।

बाजार मांग और उपभोक्ता प्राथमिकताएँ

वर्तमान समय में स्वास्थ्य के प्रति जागरूक उपभोक्ता ताजा, पोषणयुक्त और रसायन मुक्त खाद्य उत्पादों को अधिक महत्व देते हैं। माइक्रोग्रीन्स का उपयोग सलाद, सूप, सैंडविच, स्मूदी तथा गार्निश के रूप में तेजी से बढ़ रहा है। उपभोक्ता विशेष रूप से रंगीन, ताजे और जैविक तरीकों से उत्पादित माइक्रोग्रीन्स को अधिक पसंद करते हैं। इसी कारण बाजार में इनकी मांग और बिक्री लगातार बढ़ती जा रही है।

कम स्थान में पोषण का समृद्ध स्त्रोत

अवसर

माइक्रोग्रीन्स की खेती छोटे और बड़े दोनों स्तरों पर कृषि उद्यमिता के लिए अच्छे अवसर प्रदान करती है। रेस्तराँ होटल, सुपरमार्केट और ऑनलाइन बिक्री प्लेटफॉर्म इसके लिए एक मजबूत बाजार उपलब्ध कराते हैं। इसके अलावा ऊर्ध्वाधर खेती, हाइड्रोपोनिक्स और नियंत्रित पर्यावरण जैसी आधुनिक तकनीकों की सहायता से वर्षभर उच्च गुणवत्ता वाली माइक्रोग्रीन्स का उत्पादन किया जा सकता है। इससे किसानों, युवाओं और स्टार्टअप उद्यमियों को नए आय स्रोत प्राप्त होते हैं और कृषि क्षेत्र में नवाचार को भी बढ़ावा मिलता है।

चुनौतियों का समाधान

माइक्रोग्रीन्स उत्पादन में कुछ प्रमुख चुनौतियाँ सामने आती हैं, जिनमें फफूंदी तथा अन्य रोगों का प्रकोप, उपयुक्त उगाने वाले माध्यम का चयन, उत्पाद की ताजगी बनाए रखना तथा परिवहन से संबंधित समस्याएँ शामिल हैं। इन चुनौतियों का समाधान उचित और स्वच्छ उत्पादन तकनीकों को अपनाकर किया जा सकता है। नियंत्रित नमी और तापमान, अच्छी वायु संचार व्यवस्था, पर्याप्त प्रकाश तथा स्वच्छ वातावरण बनाए रखने से फफूंदी और रोगों की आशंका कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त आधुनिक पैकेजिंग तकनीकों का उपयोग माइक्रोग्रीन्स की ताजगी बनाए रखने और उन्हें सुरक्षित रूप से बाजार तक पहुँचाने में सहायक होता है।

भावी संभावनाएँ

भविष्य में माइक्रोग्रीन्स उत्पादन के क्षेत्र में स्वचालित, स्मार्ट फार्मिंग, सेंसर-आधारित निगरानी प्रणाली तथा पोषण समृद्ध किस्मों का विकास महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। वर्तमान में हो रहे शोध मुख्य रूप से माइक्रोग्रीन्स में एंटीऑक्सीडेंट और फाइटोकेमिकल्स की मात्रा बढ़ाने, उत्पादन लागत कम करने, रोग प्रबंधन तकनीकों को बेहतर बनाने तथा उत्पादन दक्षता बढ़ाने पर केंद्रित हैं। आने वाले समय में उन्नत तकनीकों और वैज्ञानिक अनुसंधान के माध्यम से इस क्षेत्र में और भी अधिक संभावनाएँ विकसित होने की उम्मीद है।

माइक्रोग्रीन्स पोषण, स्वास्थ्य और आर्थिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण फसल हैं। आधुनिक तकनीकों, बढ़ती बाजार मांग और कृषि नवाचार के साथ यह छोटे किसानों से लेकर बड़े उद्यमियों तक सभी के लिए एक लाभकारी विकल्प बनती जा रही है। निरंतर अनुसंधान, उन्नत तकनीकों और वैज्ञानिक प्रबंधन के माध्यम से माइक्रोग्रीन्स की गुणवत्ता, उत्पादकता और बाजार मूल्य को और अधिक बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार माइक्रोग्रीन्स भविष्य की टिकाऊ और पोषण सुरक्षित कृषि प्रणाली का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन सकते हैं।

ट्रे में उत्पादित माइक्रोग्रीन

पंचकुट्टा-थार मरुस्थल की पारंपरिक खाद्य प्रणाली

मयंक शर्मा[1], किरण यादव[2] और पियूष चंदेल[1]

भारत, विश्व के प्रमुख अनाज उत्पादक देशों में शामिल है। इसके बावजूद सार्वभौमिक पोषण सुरक्षा पूरी तरह सुनिश्चित नहीं हो पाई है। वर्तमान में लगभग 25 करोड़ ग्रामीण जनसंख्या, विशेषकर शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में, विभिन्न तकनीकी, संस्थागत तथा सामाजिक-आर्थिक कारणों से पोषण असुरक्षा का सामना कर रही है। पश्चिमी भारत का थार मरुस्थल अपनी कठोर जलवायु, कम और अनियमित वर्षा, कमजोर मृदा तथा सीमित संसाधनों के कारण कृषि और पोषण सुरक्षा के लिए एक निरंतर चुनौती बना हुआ है। इन प्रतिकूल परिस्थितियों में स्थानीय समुदायों ने पारंपरिक ज्ञान और स्वदेशी कृषि आधारित जीवन पद्धतियों के माध्यम से प्रकृति के साथ सहअस्तित्व स्थापित किया है। जैव विविधता का संरक्षण, स्थानीय रूप से अनुकूलित फसलें तथा पारंपरिक संरक्षण और प्रसंस्करण तकनीकें क्षेत्रीय खाद्य और पोषण सुरक्षा का आधार रही हैं। इन्हीं प्रयासों के परिणामस्वरूप पंचकुट्टा जैसी विशिष्ट खाद्य प्रणाली विकसित हुई, जो मरुस्थलीय क्षेत्रों की पोषण आवश्यकताओं को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

पंचकुट्टा, थार मरुस्थल की एक विशिष्ट पारंपरिक खाद्य प्रणाली है, जो स्थानीय शुष्क वनस्पतियों पर आधारित होकर पोषण, खाद्य विविधता और आजीविका सुरक्षा को सुदृढ़ करती है। इसके घटक पोषण एवं औषधीय गुणों से भरपूर होते हैं और पारंपरिक संरक्षण तथा प्रसंस्करण विधियों के माध्यम से इन्हें वर्षभर उपयोग के लिए सुरक्षित रखा जाता है। शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में पंचकुट्टा एक सतत, संतुलित और स्वास्थ्यवर्धक आहार का महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है।

पंचकुट्टा न केवल पोषण आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक परंपराओं, आजीविका सृजन तथा खाद्य विविधता को भी सुदृढ़ करता है। इसकी तैयारी में प्रचुर धूप का उपयोग कर सुखाने की पारंपरिक विधि अपनाई जाती है, जो शुष्क क्षेत्रों के लिए अत्यंत उपयुक्त है। इस प्रकार पंचकुट्टा स्थानीय जैव विविधता, पारंपरिक ज्ञान और सतत खाद्य प्रणालियों का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है।

[1]सब्जी विज्ञान, कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान; [2]फल विज्ञान, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान

उपयोग

विभिन्न क्षेत्रों में पंचकुट्टा के उपभोग प्रतिरूप से स्पष्ट होता है कि इसका प्रमुख रूप से सब्जी के रूप में सेवन किया जाता है, जबकि अचार के रूप में इसका उपयोग द्वितीय प्राथमिकता पर रहता है। सब्जी के रूप में पंचकुट्टा का सेवन सामान्यत: मार्च से सितंबर तक किया जाता है, जिसका कारण इसकी शीतल प्रकृति मानी जाती है, जबकि अचार के रूप में इसका उपयोग वर्षभर सभी आयु वर्गों द्वारा किया जाता है। कुछ क्षेत्रों में पंचकुट्टा का चूर्ण एवं काढ़े के रूप में भी सेवन प्रचलित है, जिसे पेट, गैस, गठिया तथा गले से संबंधित समस्याओं के उपचार हेतु औषधीय रूप में उपयोग किया जाता है।

वर्तमान अध्ययन पंचकुट्टा की विशेषताओं, घटकों, पारंपरिक प्रसंस्करण विधियों तथा उपयोगिता का समग्र वर्णन प्रस्तुत करता है, जो शुष्क क्षेत्रों में खाद्य और पोषण सुरक्षा को समझने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

पंचकुट्टा की संरचना

मरुस्थलीय क्षेत्रों में वनस्पतियों की उपलब्धता सीमित और अल्पकालिक होती है, जिसके कारण स्थानीय समुदायों ने जीवन निर्वाह तथा स्वास्थ्य संरक्षण के लिए प्रभावी अनुकूलन रणनीतियाँ विकसित की हैं। वर्तमान समय में बढ़ते सामाजिक एवं पारिस्थितिक दबावों के कारण हाशिए पर स्थित समुदायों के जैव-सांस्कृतिक संसाधन और आजीविका प्रणालियाँ प्रभावित हो रही हैं।

इन परिस्थितियों के प्रत्युत्तर में थार मरुस्थल के निवासियों ने जैव-सांस्कृतिक संसाधनों पर आधारित एक स्थान विशिष्ट खाद्य अनुकूलन प्रणाली विकसित की है, जिसे पंचकुट्टा कहा जाता है। यह कैर, कुमट, खेजड़ी, लसोड़ा जैसे मरुस्थलीय वृक्षों तथा मौसमी बेल काचरी के खाद्य भागों को धूप में सुखाकर तैयार किया जाता है।

पाँच घटकों का यह संयोजन उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के समग्र उपयोग के माध्यम से वर्षभर पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करता है। स्थानीय रूप से संकलित ये वनस्पतियाँ पोषणीय, औषधीय और सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। पंचकुट्टा के प्रत्येक घटक की विशिष्ट उपलब्धता अवधि और पोषण संबंधी विशेषताएँ मिलकर इसे

एक संतुलित, स्वास्थ्यवर्धक और पारंपरिक खाद्य प्रणाली के रूप में स्थापित करती हैं। इस ज्ञान और परंपरा का हस्तांतरण पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानीय समुदायों में होता रहा है।

पंचकुट्टा में विभिन्न घटकों का अनुपात

पंचकुट्टा पश्चिमी राजस्थान में व्यापक रूप से प्रचलित एक संतुलित पारंपरिक आहार है, जो स्थानीय स्तर पर उपलब्ध खाद्य एवं पोषक तत्वों का महत्वपूर्ण स्रोत है। समय के साथ इसके घटकों के अनुपात में परिवर्तन हुआ है, तथा यद्यपि कोई निश्चित मानक अनुपात निर्धारित नहीं है, फिर भी पाँचों घटकों को पोषणीय आवश्यकता एवं स्वाद संतुलन के अनुसार विभिन्न अनुपातों में मिश्रित किया जाता है। घटकों का अनुपात स्थानीय सांस्कृतिक परंपराओं, प्राकृतिक वनस्पति की उपलब्धता, संग्रहण की सुगमता तथा स्वादात्मक एवं रासायनिक गुणों से प्रभावित होता है। कैर, कुमट एवं खेजड़ी की प्रचुरता वाले क्षेत्रों में इनका अनुपात अधिक पाया जाता है, जबकि सीमित उपलब्धता, कठिन संग्रहण एवं भौतिक गुणों के कारण कुछ घटकों का उपयोग अपेक्षाकृत कम रहता है। इस प्रकार पंचकुट्टा स्थानीय उपलब्धता, सांस्कृतिक विविधता और पोषणीय संतुलन के समन्वय से विकसित एक विशिष्ट पारंपरिक खाद्य प्रणाली के रूप में परिलक्षित होता है।

औषधीय गुणों से भरपूर पंचकुट्टा

पंचकुट्टा के पोषक गुण

पंचकुट्टा के विभिन्न घटकों की रासायनिक संरचना के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश घटकों में नमी की मात्रा कम होती है, जो इनके दीर्घकालीन भंडारण तथा पोषक तत्वों की सघनता के लिए अनुकूल है। सभी घटकों में प्रोटीन की पर्याप्त मात्रा पाई जाती है, जिससे पंचकुट्टा एक प्रोटीन समृद्ध पारंपरिक खाद्य उत्पाद के रूप में उभरता है। काचरी वसा और खनिजों से समृद्ध होती है, जबकि कुमट में प्रोटीन तथा वसा की अधिकता पाई जाती है। खेजड़ी और लसोड़ा आहारीय रेशे के अच्छे स्रोत हैं, वहीं काचरी, खेजड़ी और कैर कार्बोहाइड्रेट की दृष्टि से महत्वपूर्ण माने जाते हैं। इन घटकों में खनिज तथा विटामिन की प्रचुरता पंचकुट्टा को पोषण की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण बनाती है। इसके पाँचों घटकों की विभिन्न पोषणीय विशेषताओं का संतुलित संयोजन इसे एक समृद्ध खाद्य तथा औषधीय उत्पाद के रूप में स्थापित करता है, जिसका आधार स्थानीय समुदायों का पीढ़ियों से विकसित अनुभवजन्य ज्ञान है।

सारणी: पंचकुट्टा के विभिन्न घटकों की पोषक संरचना

पोषक तत्व	काचरी	कैर	सांगरी	लसोड़ा	कुमट
नमी (%)	8.8	11.9	6.9	9.9	10.5
प्रोटीन (ग्राम)	2.6	13.4	17.7	9.2	33.3
वसा (ग्राम)	10.4	3.6	1.2	5.1	9.1
राख/खनिज (ग्राम)	11.9	5.4	4.5	4.1	4.8
आहारीय रेशा (ग्राम)	9.9	12.8	22.8	24.7	10.3
कार्बोहाइड्रेट (ग्राम)	58.3	53.4	47.5	46.9	32.8

सारणी: पंचकुट्टा के विभिन्न घटकों की उपलब्धता अवधि एवं उपयोगी खाद्य भाग

सामान्य नाम	वैज्ञानिक नाम	उपलब्धता का मौसम	उपयोग किए जाने वाले भाग
काचरी	कुकुमिस कैलोसस (रॉट.) कॉन्ग.	खरीफ एवं ग्रीष्म	फल एवं बीज
कैर	कैपेरिस डेसिडुआ (फोर्स्क.) एजवर्थ	ग्रीष्म एवं शीत	फल
कुमट	अकेशिया सेनेगल	खरीफ	बीज एवं फलियाँ
खेजड़ी	प्रोसोपिस सिनेरेरिया	ग्रीष्म	फलियाँ
लसोड़ा	कॉर्डिया मिक्सा	ग्रीष्म	फल

थार मरुस्थल के स्वदेशी समुदायों तथा उनकी पारंपरिक खाद्य प्रणालियों पर केंद्रित पंचकुट्टा जैसी विशिष्ट खाद्य प्रणाली स्थानीय शुष्क वनस्पतियों पर आधारित होकर पोषण एवं खाद्य सुरक्षा का प्रभावी उदाहरण प्रस्तुत करती है।

खाद्य संबंधी व्यवहार उपभोग प्रतिरूपों और आहार प्रथाओं को गहराई से प्रभावित करते हैं, जो सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, पारंपरिक तथा पर्यावरणीय कारकों की पारस्परिक अंत:क्रिया से निर्मित होते हैं। वर्तमान समय में बढ़ते आधुनिकीकरण के दबाव के बीच इन कारकों की समझ और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है।

खाद्य और पोषण सुरक्षा को सुदृढ़ करने के लिए रणनीतिक तथा समुदाय आधारित हस्तक्षेप आवश्यक हैं। इसके अंतर्गत स्वदेशी मरुस्थलीय खाद्य उत्पादों, विशेष रूप से पंचकुट्टा, के पोषणीय महत्व का प्रभावी उपयोग करते हुए आहार विविधीकरण को बढ़ावा देना आवश्यक है।

देसी फलों का महत्व एवं संरक्षण

उपेन्द्र यादव[1], विवेक कुमार त्रिपाठी[2] और वेदान्त सिंह[1]

भारत में देसी फलों का कुल क्षेत्रफल लगभग 6.56 प्रतिशत (0.437 मिलियन हैक्टर) है, जबकि इनकी औसत उत्पादकता लगभग 11.47 टन प्रति हैक्टर तक पाई जाती है। इसके बावजूद देसी फलों को कृषि विकास की मुख्यधारा में अपेक्षित स्थान नहीं मिल पाया है। वर्तमान में वैश्विक भूख सूचकांक में भारत का 123 देशों में 102वाँ स्थान है जो कुपोषण की गंभीर स्थिति को दर्शाता है। वर्तमान समय में बढ़ती जनसंख्या, कुपोषण तथा जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को देखते हुए देसी फलों का संरक्षण और संवर्धन अत्यंत आवश्यक है। देसी फल कई व्यावसायिक फलों की तुलना में खनिज तत्वों, एंटीऑक्सीडेंट्स तथा फाइटोन्यूट्रिएंट्स से अधिक समृद्ध होते हैं। यदि इन फसलों का वैज्ञानिक तरीके से संरक्षण, सुधार तथा मूल्यवर्धन किया जाए, तो ये खाद्य सुरक्षा, पोषण, स्वास्थ्य और आर्थिक स्थिरता में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

भारत विविध भौगोलिक, जलवायु और पारिस्थितिक परिस्थितियों वाला एक समृद्ध देश है, जहाँ कई वर्षों से विभिन्न प्रकार के देसी फल उगाए जाते रहे हैं। ये फल न केवल पारंपरिक आहार का महत्वपूर्ण हिस्सा रहे हैं, बल्कि स्थानीय समुदायों के स्वास्थ्य, आय और सांस्कृतिक जीवन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते आए हैं। देसी फल, जिन्हें कभी-कभी "अल्प-उपयोगी" फल कहा जाता है, आज भी पोषण, औषधीय और आर्थिक दृष्टि से अत्यंत मूल्यवान हैं।

[1]शोध छात्र, फल विज्ञान विभाग, [2]अधिष्ठाता, उद्यान महाविद्यालय एवं विभागाध्यक्ष, फल विज्ञान विभाग चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर -208 002 (उत्तर प्रदेश)

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान में वृद्धि, पराबैंगनी विकिरण के स्तर में परिवर्तन तथा सूखा और बाढ़ जैसी चरम घटनाओं की आवृत्ति बढ़ रही है। इसके परिणामस्वरूप विशेष रूप से शुष्क और अर्ध शुष्क क्षेत्रों में मृदा लवणता, खनिज तत्वों की कमी अथवा विषाक्तता तथा फसलों में रोग और कीट प्रकोप की समस्याएँ अधिक गंभीर होती जा रही हैं। ऐसी परिस्थितियों में परंपरागत व्यावसायिक फसलों की उत्पादकता और स्थिरता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

लाभकारी

देसी फलों में प्राकृतिक रूप से विटामिन, खनिज, एंटीऑक्सीडेंट्स और फाइटोन्यूट्रिएंट्स की प्रचुर मात्रा पाई जाती है, जो प्रतिरक्षा प्रणाली को सुदृढ़ करने, शरीर को रोगों से बचाने और समग्र स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में सहायक होते हैं। कई देसी फल जैसे आंवला, बेल, बेर और करौंदा आयुर्वेद तथा पारंपरिक चिकित्सा में अपने औषधीय गुणों के लिए प्रसिद्ध हैं। इनके नियमित सेवन से कुपोषण और विटामिन की कमी को कम करने में सहायता मिलती है तथा हृदय रोग, मधुमेह और पाचन संबंधी समस्याओं जैसी जीवनशैली से जुड़े रोगों के जोखिम को भी कम किया जा सकता है।

जलवायु अनुकूल विकल्प

इन चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में कृषि प्रणालियों में देसी फलों का समावेशन एक प्रभावी और टिकाऊ रणनीति सिद्ध हो सकता है। देसी फलों में विशिष्ट रूपात्मक, शारीरिक, संरचनात्मक तथा जैव-रासायनिक अनुकूलन गुण पाए जाते हैं, जो उन्हें कठोर और प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक विकसित होने और उत्पादन देने में सक्षम बनाते हैं। यही कारण है कि ये फसलें शुष्क और अर्ध शुष्क क्षेत्रों के लिए अत्यंत उपयुक्त मानी जाती हैं।

अधिकांश कम उपयोग किए जाने वाले फल सस्ते और अत्यधिक पौष्टिक होते हैं। ये अपने औषधीय गुणों के लिए जाने जाते हैं तथा स्थानीय जनजातियों द्वारा विभिन्न रोगों के उपचार में इनका उपयोग किया जाता है। कई देसी फल प्रजातियों की पत्तियों, फलों और बीजों का उपयोग पारंपरिक भारतीय चिकित्सा और आयुर्वेद में औषधीय खाद्य उत्पादों के रूप में किया जाता है।

पौष्टिक बेर

आँवला

यह अपने औषधीय एवं चिकित्सीय गुणों के कारण "अमृतफल" अथवा स्वास्थ्य के लिए चमत्कारी फल माना जाता है। बारबाडोस चेरी के बाद आँवला फलों में विटामिन सी (500-1800 मि.ग्रा./100 ग्राम) का सबसे समृद्ध स्रोत है। इसके अतिरिक्त इसमें ल्यूकोएन्थोसाइनिन, पॉलीफेनॉल, पेक्टिन, आयरन, कैल्शियम और फॉस्फोरस प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। इन गुणों के कारण आँवला का उपयोग आयुर्वेदिक औषधियों जैसे त्रिफला और च्यवनप्राश के निर्माण में व्यापक रूप से किया जाता है।

डाली पर लदे आँवला

बेर: इसे शुष्क क्षेत्रों का राजा फल अथवा "गरीब आदमी का सेब" भी कहा जाता है। बेर फल का गूदा स्पंजी, मीठा एवं स्वादिष्ट होता है और यह विटामिन सी, बी और ए, कैरोटिनॉइड्स, प्रोटीन, कैल्शियम, फॉस्फोरस, पोटेशियम, रूबिडियम, ब्रोमीन तथा शर्कराओं (फ्रक्टोज, ग्लूकोज और गैलेक्टोज) का उत्कृष्ट स्रोत है। बेर के बीजों में सैपोनिन, जुजूबोजेनिन तथा ओबेलिन लैक्टोन पाए जाते हैं।

बेर की लकड़ी का उपयोग ईंधन या कोयला बनाने में किया जाता है तथा इसकी पत्तियाँ भेड़ और बकरियों के लिए चारे के रूप में प्रयुक्त होती हैं।

लसोड़ा

इसे स्थानीय रूप से गोंदा, लेहसुआ, इंडियन चेरी, अस्सीरियन प्लम अथवा बड्र्स नेस्ट ट्री के नाम से जाना जाता है। इसकी पत्तियों का उपयोग लाख कीट पालन में किया जाता है। लसोड़ा का फल प्राकृतिक रूप से एंटीऑक्सीडेंट्स से भरपूर माना जाता है, जिनमें कैरोटिनॉयड्स, एस्कॉर्बिक अम्ल, फिनॉलिक यौगिक तथा खनिज तत्व प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त इसमें कच्चा रेशा (क्रूड फाइबर), प्रोटीन, राख तत्व तथा विभिन्न विटामिन पाए जाते हैं, जो मानव स्वास्थ्य के लिए आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करते हैं। पारंपरिक रूप से लसोड़ा का उपयोग कैंसररोधी, कृमिनाशक, मूत्रवर्धक, श्लेष्मल, कफनिस्सारक तथा बालों की वृद्धि को बढ़ावा देने में भी किया जाता है।

लसोड़ा

बेल: यह भारत के सबसे प्राचीन देसी फलों में से एक है। बेल का फल राइबोफ्लेविन (विटामिन बी$_2$) का समृद्ध स्रोत है, जिसका उपयोग बेरी-बेरी रोग के उपचार में किया जाता है। कच्चे फल को अतिसार (दस्त) एवं पेचिश के उपचार में उपयोगी माना जाता है, जबकि फल में पाया जाने वाला मार्मेलोसिन पेट से संबंधित रोगों के लिए प्रभावी औषधि है। इसके अतिरिक्त बेल के पौधे के सभी भागों में विभिन्न औषधीय यौगिक पाए जाते हैं, जैसे कूमारिन, एल्कलॉइड, स्टेरॉल तथा आवश्यक तेल। इनमें दर्दनाशक, ज्वरनाशक, सूजनरोधी, फफूंदरोधी, रक्त शर्करा कम करने वाले, वसा असंतुलन रोधी तथा घाव भरने वाले गुण पाए जाते हैं।

करौंदा: यह भारत में उत्पन्न हुआ एक देसी पौधा है तथा स्थानीय रूप से क्राइस्ट्स थॉर्न के नाम से भी जाना जाता है। विभिन्न जीनोटाइप्स के अनुसार करौंदा के फल सफेद, हरे, बैंगनी तथा गुलाबी-लाल रंग के पाए जाते हैं। कच्चे फलों का उपयोग प्राय: अचार और चटनी बनाने में किया जाता है, जबकि पूर्ण रूप से पके फलों का सेवन ताजा रूप में किया जाता है या कैंडी तथा रंगीन अर्क बनाने में उपयोग किया जाता है।

करौंदा का फल लौह तत्व (आयरन) का अत्यंत समृद्ध स्रोत माना जाता है (लगभग 39 मि.ग्रा./100 ग्राम)। इसमें पर्याप्त मात्रा में विटामिन सी भी पाया जाता है, इसलिए इसका उपयोग एनीमिया (रक्ताल्पता) और स्कर्वी रोग के उपचार में किया जाता है। इसके अतिरिक्त करौंदा कैल्शियम, मैग्नीशियम तथा फॉस्फोरस का भी अच्छा स्रोत है और इसमें उच्च एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि पाई जाती है।

कैथा (वुड एप्पल): वुड एप्पल एक देसी फलदार वृक्ष है, जिसे भारत में कैथा, एलीफेंट एप्पल तथा मंकी फ्रूट के नाम से भी जाना जाता है। कैथा के विभिन्न भाग उत्कृष्ट औषधीय एवं कार्यात्मक गुणों से भरपूर होते हैं। इसकी पत्तियाँ मूत्रवर्धक, जीवाणुरोधी

कैथा

तथा पेट संबंधी रोगों के उपचार में उपयोगी मानी जाती हैं।

पौधे की जड़ और छाल में कीटनाशी गुण पाए जाते हैं तथा इन्हें पारंपरिक रूप से सर्पदंश के उपचार में प्रयोग किया जाता है। इसके काँटों का उपयोग यकृत रोगों तथा अत्यधिक मासिक स्राव की समस्याओं में किया जाता है। कैथा से प्राप्त गोंद अतिसार और मधुमेह के उपचार में सहायक माना जाता है, जबकि इसके फल का गूदा त्वचा रोग, दस्त, गले की खराश, पीलिया तथा जठर संबंधी रोगों में उपयोगी माना जाता है।

जामुनः यह एक देसी, सदाबहार और कठोर फलदार वृक्ष है, जो स्वभाविक रूप से उपेक्षित और दलदली क्षेत्रों में उगता है। जामुन में कई जैव-रासायनिक यौगिक पाए जाते हैं, जैसे एंथोसायनिन्स, मायरिसेटिन, एलाजिक एसिड, आइसोक्वेरसेटिन, ग्लूकोसाइड तथा कैम्पफेरोल। इन यौगिकों के कारण जामुन में सूजनरोधी, जीवाणुरोधी, एंटीऑक्सीडेंट तथा अल्सररोधी गुण पाए जाते हैं। जामुन के बीजों में पाए जाने वाले ग्लाइकोसाइड्स, जैसे जाम्बोलिन या एंटिमेलिन, स्टार्च को शर्करा में परिवर्तित होने से रोकते हैं, जिससे इसमें मधुमेहरोधी गुण पाए जाते हैं।

सीताफलः यह एक सूखा-सहिष्णु फलदार पौधा है। इसके फल की मांग घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय बाजार में लगातार बढ़ रही है, जिसका मुख्य कारण इसका सुगंधित स्वाद तथा इसके औषधीय और पोषण गुण हैं। सीताफल में विटामिन ए, बी, सी और ई आवश्यक खनिज, एंटीऑक्सीडेंट्स तथा पॉलीअनसैचुरेटेड फैटी एसिड्स पाए जाते

करौंदा

जामुन

हैं। इसके औषधीय गुणों में मलेरियारोधी, कीटप्रतिरोधक तथा रोगप्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने वाले गुण शामिल हैं। इसके अतिरिक्त सीताफल का उपयोग सौंदर्य और कॉस्मेटिक उत्पादों में भी किया जाता है, जैसे परफ्यूम, साबुन, पिंपल क्रीम, आवश्यक तेल, हेयर लोशन, आयुर्वेदिक स्लिम कैप्सूल, कोल्ड बाम, मसाज तेल और फुट केयर क्रीम।

देसी फल प्रजातियों का संरक्षण

भारत में देसी फल प्रजातियों के संरक्षण की वर्तमान स्थिति के अनुसार, भाकृअनुप-एनबीपीजीआर तथा इसके सहयोगी केंद्रों में कुल 1717 अभिगम संरक्षित किए गए हैं। वहीं देश में देसी फल प्रजातियों पर कार्य कर रहे प्रमुख अनुसंधान संस्थान अपने स्थानीय जीन बैंकों में लगभग 1127 नमूनों का संरक्षण कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त, ग्यारह कम उपयोग की जाने वाली फल प्रजातियों से संबंधित 357 अभिगमों को दीर्घकालीन संरक्षण के लिए जीन बैंकों में क्रायोप्रिजर्वेशन की विधि से सुरक्षित रखा गया है।

स्वदेशी एवं कम उपयोग वाली महत्वपूर्ण फल प्रजातियों के संरक्षण तथा उनके उपयोग में सक्रिय रूप से योगदान देने वाले व्यक्तियों, समुदायों और संस्थाओं को सम्मानित करने तथा उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान करने की आवश्यकता है। इसके साथ ही विद्यालय स्तर के पाठ्यक्रम में स्वदेसी फल प्रजातियों को शामिल करने से बच्चों में प्रारंभिक अवस्था से ही इनके प्रति जागरूकता विकसित की जा सकती है।

आय और मूल्यवर्धन

देसी फलों से ताजे फल के साथ-साथ मूल्यवर्धित उत्पाद, जैसे मुरब्बा, अचार, जैम और पेय पदार्थ तैयार कर किसानों की आय बढ़ाई जा सकती है। इससे छोटे और सीमांत किसानों के परिवारों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती है तथा गरीबी उन्मूलन में भी सकारात्मक योगदान मिलता है। स्थानीय स्तर पर प्रसंस्करण और विपणन को बढ़ावा देकर ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसर भी सृजित किए जा सकते हैं। कई देसी फल प्रजातियाँ खानपान की परंपराओं, स्वास्थ्य संबंधी प्रथाओं, धार्मिक अनुष्ठानों और सामाजिक जीवन से गहराई से जुड़ी हुई हैं। इस प्रकार देसी फल न केवल कृषि और पोषण का स्रोत हैं, बल्कि सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण और संवर्धन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, कुपोषण और कृषि संकट की परिस्थितियों को देखते हुए देसी फल फसलें भारत के लिए एक सतत, पोषण समृद्ध और आर्थिक रूप से व्यावहारिक विकल्प प्रस्तुत करती हैं। यदि इन फसलों का वैज्ञानिक ढंग से संरक्षण, सुधार और उपयोग किया जाए, तो वे खाद्य सुरक्षा, पोषण, स्वास्थ्य, किसानों की आय और पर्यावरणीय संतुलन को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं। इस प्रकार जलवायु परिवर्तन के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देसी फल फसलें भारत की कृषि के लिए एक स्थायी, सुरक्षित और भविष्य उन्मुख विकल्प सिद्ध हो सकती हैं।

जीरे की उन्नत बीज उत्पादन तकनीक

जोगेन्द्र सिंह[1], नेतराम[2] और **करन सचदेवा[3]**

भारत, विश्व में जीरे का सबसे बड़ा उत्पादक देश है। देश में मुख्यत: गुजरात और राजस्थान में जीरे की खेती की जाती है, जो कुल उत्पादन का 90 प्रतिशत से अधिक योगदान करते हैं। राजस्थान में जीरा उत्पादन के प्रमुख जिले जोधपुर, जालोर, नागौर, बाड़मेर तथा जैसलमेर हैं। यह एक प्रमुख बीजीय मसाला फसल है। जीरे का गुणवत्तापूर्ण बीज उत्पादन कर किसान अधिक उपज प्राप्त कर सकते हैं और इसे बेहतर मूल्य पर बेचकर अपनी आय में वृद्धि कर सकते हैं। इससे किसानों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती है तथा उनके परिवार के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर में भी सुधार होता है।

जीरा (क्युमिनम साइमिनम एल.) क्षेत्रफल और उत्पादन की दृष्टि से एक प्रमुख बीजीय मसाला फसल है। यह कम अवधि में पकने वाली, कम पानी की आवश्यकता वाली तथा अधिक लाभ देने वाली फसल मानी जाती है। जीरे का उपयोग विभिन्न प्रकार की सब्जियों, सूप, अचार, सॉस तथा पनीर आदि को स्वादिष्ट और सुगंधित बनाने के लिए मसाले के रूप में किया जाता है।

[1]सहायक आचार्य, आनुवंशिक एवं पादप प्रजनन विभाग, [2]फार्म मैनेजर, कृषि महाविद्यालय, कुम्हेर
[3]विद्यावाचस्पति छात्र, आनुवंशिक एवं पादप प्रजनन विभाग, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर

बीज उत्पादन तकनीक

जलवायु: जीरे की फसल पाले के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती है। पुष्पावस्था तथा दाना बनने की अवस्था में वायुमंडल में अधिक आर्द्रता जीरे की खेती के लिए अनुकूल नहीं रहती, क्योंकि ऐसी स्थिति में झुलसा रोग के प्रकोप की आशंका बढ़ जाती है।

भूमि का प्रकार एवं तैयारी: जीरे की फसल के लिए उचित जल निकास वाली दोमट मिट्टी सबसे उपयुक्त मानी जाती है। खेत की दो से तीन बार हैरो या देसी हल से जुताई कर मिट्टी को भुरभुरी बना लें तथा अंत में पाटा लगाकर खेत को समतल कर बुआई के लिए तैयार करें।

उन्नत किस्में

जीरा की खेती के लिए क्षेत्रानुसार उन्नत किस्मों का चयन करना आवश्यक है। राजस्थान के लिए आर.जेड.-19, आर.जेड.-209, आर.जेड.-223, आर.जेड.-341 तथा आर.जेड.-345, जबकि गुजरात के लिए जी.सी.-1, जी.सी.-2, जी.सी.-3, जी.सी.-4 तथा जी.सी.-5 किस्में उपयुक्त मानी जाती हैं।

खेत का चयन: जीरे का बीज उत्पादन के लिए ऐसे खेत का चयन करना चाहिए, जिसमें पिछले दो वर्षों से जीरे की अन्य किस्म की खेती न की गई हो। इससे किस्म की शुद्धता बनाए रखने में सहायता मिलती है।

पृथक्करण दूरी: जीरे के आधार बीज तथा प्रमाणित बीज उत्पादन के लिए क्रमश: 800 मीटर और 400 मीटर की पृथक्करण दूरी बनाए रखना आवश्यक है। इस दूरी के भीतर आसपास जीरे की अन्य किस्मों की फसल नहीं होनी चाहिए।

बुआई: जीरे की बुआई के लिए सबसे उपयुक्त समय 15 से 30 नवम्बर माना जाता है। बुआई 30 सें.मी. की दूरी पर कतारों में करना उपयुक्त रहता है, हालांकि इसे छिटकवां विधि से भी बोया जा सकता है। बुआई के समय इस बात का ध्यान रखें कि बीज पर मिट्टी की परत 1.5 सें.मी. से अधिक मोटी न हो।

बीज स्रोत: बीज उत्पादन के लिए बीज को प्रमाणित स्रोतों जैसे कृषि विश्वविद्यालयों, कृषि अनुसंधान केन्द्रों, कृषि विज्ञान केन्द्रों, राष्ट्रीय बीज निगम तथा राज्य बीज निगम से ही खरीदना चाहिए। साथ ही प्रमाणीकरण प्रक्रिया के लिए बीज का बिल, बैग तथा टैग/लेबल सुरक्षित रखना आवश्यक है। आधार बीज तथा प्रमाणित बीज उत्पादन के लिए क्रमश: प्रजनक बीज और आधार बीज का उपयोग किया जाता है।

बीज की मात्रा एवं उपचार

जीरे की खेती के लिए 12-15 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। बीज जनित रोगों से बचाव के लिए बीजों को ट्राइकोडर्मा मिश्रण 10 ग्राम या कार्बेण्डाजिम अथवा थीरम 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित कर बुआई करनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक: गोबर की सड़ी हुई खाद 10-15 टन प्रति हैक्टर की दर से दो वर्ष में एक बार खेत में अच्छी तरह मिला देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त 30

कीट एवं रोगों की रोकथाम

एफिड/चेंपा: इस कीट की रोकथाम के लिए बीज को इमिडाक्लोप्रिड 70 डब्ल्यू.एस. 7.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। इसके अतिरिक्त फसल में प्रकोप दिखाई देने पर डाइमिथोएट 30 ई.सी. 500 मि.ली. या मैलाथियॉन 50 ई.सी. 500 मि.ली. प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें। आवश्यकता होने पर 10-15 दिनों बाद छिड़काव दोहराया जा सकता है।

उकठा (विल्ट): इस रोग की रोकथाम के लिए बीज को बाविस्टीन (कार्बेण्डाजिम) 2 ग्राम या ट्राइकोडर्मा 4 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित कर बुआई करनी चाहिए।

झुलसा (ब्लाइट): इस रोग के नियंत्रण के लिए बीज को कार्बेण्डाजिम या मैंकोजेब 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज अथवा ट्राइकोडर्मा 4 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। रोग के प्रकोप की स्थिति में फसल पर डाइथेन एम-45 (मैंकोजेब) 2 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

जीरा फसल में पुष्पण अवस्था

कि.ग्रा. नाइट्रोजन तथा 20 कि.ग्रा. फॉस्फोरस प्रति हैक्टर की दर से देना चाहिए। नाइट्रोजन की आधी मात्रा और फॉस्फोरस की पूरी मात्रा बुआई से पहले खेत में मिला दें, जबकि शेष आधी नाइट्रोजन बुआई के लगभग 60 दिनों बाद सिंचाई के समय दें।

सिंचाई: अच्छे अंकुरण के लिए बुआई के तुरंत बाद हल्की सिंचाई करना आवश्यक है। सामान्यत: जीरे में 10-15 दिनों में अंकुरण हो जाता है। इसके बाद मौसम और मृदा की स्थिति के अनुसार 20-25 दिनों के अंतराल पर 3-4 सिंचाइयाँ करनी चाहिए। दाना बनने के समय अंतिम सिंचाई गहरी करनी चाहिए तथा पकती हुई फसल में सिंचाई नहीं करनी चाहिए।

निराई-गुड़ाई: जीरे की फसल में दो बार निराई-गुड़ाई आवश्यक होती है। पहली निराई-गुड़ाई बुआई के लगभग 30 दिनों बाद तथा दूसरी लगभग 60 दिनों बाद करनी चाहिए। रासायनिक नियंत्रण के लिए ऑक्सीफ्लुओरफेन/ऑक्सीडायजोन 0.5-1.0 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व या ट्रिब्युटिन 0.5-1.0 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व बुआई के बाद अंकुरण से पहले प्रयोग किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त फ्लूक्लोरेलिन 1.0 कि.ग्रा. या पेंडीमेथिलीन 1.0 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व को बुआई से पहले 600-700 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव किया जा सकता है।

रोगिंग: बीज उत्पादन के लिए फसल में से अवांछनीय, अन्य किस्मों के पौधों, रोगग्रस्त पौधों तथा खरपतवारों को फूल आने से पहले ही निकाल देना चाहिए, अन्यथा ये बीज की गुणवत्ता को प्रभावित कर सकते हैं। यह प्रक्रिया फसल अवधि के दौरान कम से कम 3-4 बार करनी चाहिए। अंतिम निरीक्षण के समय बीज फसल में अवांछनीय पौधों की मात्रा आधार बीज के लिए 0.10 प्रतिशत तथा प्रमाणित बीज के लिए 0.50 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए, अन्यथा बीज फसल को अमानक घोषित किया जा सकता है।

सारणी: जीरे के बीज के निर्धारित मानक

कारक	आधार बीज	प्रमाणित बीज
शुद्ध बीज (न्यूनतम)	97 प्रतिशत	97 प्रतिशत
निष्क्रिय पदार्थ (अधिकतम)	3 प्रतिशत	3 प्रतिशत
अन्य फसलों के बीज (अधिकतम)	10/कि.ग्रा.	20/कि.ग्रा.
खरपतवारों के बीज (अधिकतम)	10/कि.ग्रा.	10/कि.ग्रा.
खरपतवारों के बीज (अधिकतम)	5/कि.ग्रा.	10/कि.ग्रा.
अंकुरण (न्यूनतम)	65 प्रतिशत	65 प्रतिशत
नमी की मात्रा (अधिकतम)	10 प्रतिशत	10 प्रतिशत

कटाई, गहाई एवं भंडारण

जीरे की फसल लगभग 100-130 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। पौधों की कटाई दरांती की सहायता से जमीन की सतह से थोड़ा ऊपर से की जाती है। कटी हुई फसल को स्वच्छ सीमेंट के फर्श पर छाया में अच्छी तरह सुखाकर उसकी गहाई करनी चाहिए। बीजों की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए भंडारण के समय दानों में नमी की मात्रा 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए।

उपज एवं आर्थिक लाभ

जीरे की उन्नत उत्पादन तकनीक अपनाने पर औसतन 8-10 क्विंटल प्रति हैक्टर उपज प्राप्त की जा सकती है। जीरे की खेती में लगभग 30-35 हजार रुपये प्रति हैक्टर का खर्च आता है। वर्तमान बाजार भाव (लगभग 120-130 रुपये प्रति कि.ग्रा.) के अनुसार किसान लगभग 80 हजार से 1 लाख रुपये प्रति हैक्टर तक का शुद्ध लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

शुष्क क्षेत्रों हेतु बेहद उपयोगी कैर

प्रकाश सिंगाठिया[1], निर्मल कुमार मीणा[2], सुभाष चन्द्र[3] और **महिमा सनोडिया[4]**

कैपैरिस डेसिडुआ सामान्यत: कैर के नाम से जाना जाता है। यह कैपरेसी परिवार का एक प्रमुख अल्पउपयोगी छोटा फलदार झाड़ी या वृक्ष है, जो भारतीय उपमहाद्वीप, मध्य-पूर्व तथा अफ्रीका के शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों का स्थानिक पौधा है। कैर एक कठोर एवं बहुउपयोगी फल वृक्ष है, जिसमें विशिष्ट शुष्क-सहिष्णु लक्षण पाए जाते हैं, जैसे गहरी जड़ प्रणाली, श्लेष्मा रस तथा मजबूत कांटे। ये विशेषताएँ इसे राजस्थान और गुजरात के शुष्क क्षेत्रों सहित बंजर एवं क्षारीय भूमियों में सफलतापूर्वक उगाने योग्य बनाती हैं। इस पौधे में विभिन्न प्रकार के जैव सक्रिय रासायनिक यौगिक पाए जाते हैं, जो इसके औषधीय गुणों को उल्लेखनीय रूप से बढ़ाते हैं। प्रस्तुत लेख में कैर पौधे के महत्व तथा इसके औषधीय एवं पोषणीय मूल्य पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। यह लेख इस अल्पउपयोगी फलदार वृक्ष के पोषक एवं औषधीय गुणों के प्रति जागरूकता बढ़ाने तथा इसके व्यावहारिक उपयोग को प्रोत्साहित करने में सहायक सिद्ध होगा। साथ ही, यह शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों की ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में भी महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करेगा।

कैर एक कठोर, बारहमासी, लकड़ीदार झाड़ी अथवा छोटा वृक्ष है, जो विश्व के गर्म, शुष्क तथा अर्धशुष्क क्षेत्रों में स्वाभाविक रूप से पाया जाता है। भारत में इसे विभिन्न नामों से जाना जाता है-राजस्थान में कैर, हरियाणा में टिंट या डेला तथा अंग्रेजी में कैपर बेरी कहा जाता है। यह पौधा रेगिस्तानी पारिस्थितिक तंत्र का एक महत्वपूर्ण घटक है, क्योंकि यह मिट्टी संरक्षण, मरुस्थलीकरण की रोकथाम तथा पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

कैर का वृक्ष

लगभग पाँच दशक पूर्व तक कैर का पौधा थार मरुस्थल में व्यापक रूप से पाया जाता था, किन्तु जनसंख्या वृद्धि, पशुधन की बढ़ती संख्या तथा कृषि योग्य भूमि के विस्तार के कारण इसकी प्राकृतिक संख्या में तीव्र कमी आई है। अत्यधिक चराई और यंत्रीकृत जुताई के परिणामस्वरूप अनेक पौधे नष्ट हो गए हैं, जिससे इसकी उपलब्धता में भारी गिरावट आई है। इसके बावजूद किसान अपने खेतों की सीमाओं पर कैर के पौधों

[1]भाकृअनुप-भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु-560 089; [2]उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़, राजस्थान-326 023; [3]पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, क्षेत्रीय अनुसंधान केंद्र, अबोहर-152 116; [4]गुरु गोविंद बल्लभ पंत कृषि विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखंड-263 145

उपयोगी

कैर में विशिष्ट शुष्क सहिष्णु गुण पाए जाते हैं, जिसके कारण यह अत्यंत सूखे, उच्च तापमान तथा पोषक तत्वों से रहित बंजर मृदा में भी आसानी से जीवित रह सकता है। यह पौधा रेतीले टीलों को स्थिर करने तथा हवा और जल द्वारा होने वाले मृदा अपरदन को रोकने में प्रभावी सिद्ध होता है। इसके छोटे, बेर जैसे कच्चे फल पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं, जिनमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन तथा विभिन्न खनिज तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। स्थानीय समुदाय इन फलों का उपयोग खाद्य उत्पाद के रूप में करते हैं।

का संरक्षण करते हैं, क्योंकि यह न केवल मिट्टी के कटाव को रोकने में सहायक है, बल्कि तेज रेगिस्तानी हवाओं से भी सुरक्षा प्रदान करता है।

इस प्रकार कैर शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों की पारिस्थितिकी तथा कृषि प्रणाली के लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण और मूल्यवान प्रजाति है।

कैर वृक्ष

कैर एक सशक्त पौधा है, जो अत्यंत प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों में भी जीवित रहने की उल्लेखनीय क्षमता रखता है। यह लगभग 650 प्रजातियों वाले वृक्षों एवं झाड़ियों के समूह में एक महत्वपूर्ण प्रजाति है, जो मुख्यत: उष्णकटिबंधीय तथा उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के शुष्क और अर्धशुष्क भागों में पाई जाती है। यह पौधा अत्यधिक तापमान सहन करने में सक्षम है तथा लगभग 0° से. 50° से. तक के तापमान में भी जीवित रह सकता है।

कैर के पौष्टिक फल

कैर जल की कमी तथा जल-तनाव की परिस्थितियों में भी अच्छा विकास करता है, जो शुष्क क्षेत्रों की एक प्रमुख समस्या है। वैज्ञानिक अध्ययनों से यह भी स्पष्ट हुआ है कि कैर और काचरी दो ऐसे महत्वपूर्ण पौधे हैं, जिन्हें शुष्क क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन के जैवसंकेतक के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

कैर अपने विकासीय व्यवहार में जलवायु परिस्थितियों के अनुसार उल्लेखनीय भिन्नता प्रदर्शित करता है। अत्यधिक गर्म एवं शुष्क मौसम में यह पौधा प्रचुर मात्रा में पुष्प और फल उत्पन्न करता है, जबकि अनुकूल मानसूनी वर्षा की स्थिति में यह अपेक्षाकृत औसत मात्रा में फूल और फल देता है।

यह पौधा स्वाभाविक रूप से उन क्षेत्रों के लिए अनुकूल है, जहाँ वार्षिक वर्षा लगभग 150 मि.मी. के आसपास होती है। तथापि इसकी उच्च अनुकूलन क्षमता के कारण इसे उन क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है, जहाँ वार्षिक वर्षा लगभग 600 मि.मी. तक होती है।

औषधीय गुण

कैर अपने समृद्ध फाइटोकेमिकल प्रोफाइल तथा व्यापक पारंपरिक औषधीय उपयोगों के कारण एक महत्वपूर्ण औषधीय पौधे के रूप में जाना जाता है। इसके विभिन्न भागों में पाए जाने वाले जैवसक्रिय यौगिक अनेक स्वास्थ्यवर्धक गुण प्रदर्शित करते हैं। इसके प्रमुख औषधीय गुण निम्नलिखित हैं:

उच्च कोलेस्ट्रॉलरोधी गुण: कैर के कच्चे फलों तथा कोमल तनों से प्राप्त अर्क प्लाज्मा ट्राइग्लिसराइड, कुल लिपिड तथा फॉस्फोलिपिड के स्तर को उल्लेखनीय रूप से कम करने में सहायक पाए गए हैं। यह प्रभाव मुख्यत: कोलेस्ट्रॉल एवं पित्त अम्लों के मल के माध्यम से उत्सर्जन को प्रोत्साहित करने के कारण होता है। इस प्रकार यह पौधा उच्च कोलेस्ट्रॉल के नियंत्रण में उपयोगी माना जाता है।

सूजनरोधी एवं दर्दनिवारक गुण: पौधे के हवाई भागों से प्राप्त एथेनॉलिक अर्क में प्रबल सूजनरोधी एवं दर्दनिवारक गुण पाए गए हैं। इसोकोडोनोकार्पिन नामक यौगिक को इन प्रभावों के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी माना जाता है। यह यौगिक सूजन को नियंत्रित करने के साथ-साथ एंटी अस्थमैटिक प्रभाव भी प्रदर्शित करता है।

रक्त में वसा स्तर रोधी गुण: कैर के फलों, छाल तथा पत्तियों में उपस्थित फ्लेवोनॉइड्स, एल्कलॉइड्स, सैपोनिन्स तथा स्टेरॉल्स जैसे यौगिक रक्त में ट्राइग्लिसराइड्स और हानिकारक वसा के स्तर को कम करने तथा लाभकारी वसा के स्तर को बढ़ाने में सहायक माने जाते हैं। इन गुणों के कारण कैर का सेवन हृदय स्वास्थ्य में सुधार, एथेरोस्क्लेरोसिस की रोकथाम तथा लिपिड मेटाबॉलिज्म के संतुलन में लाभकारी सिद्ध होता है।

रक्तचाप-नियामक गुण: कैर के एथेनॉलिक अर्क को 1-30 मि.ग्रा./कि.ग्रा. की खुराक में देने पर रक्तचाप तथा हृदयगति में खुराक-निर्भर कमी देखी गई है। पृथक गिनी पिग के एट्रिया पर किए गए प्रयोगों में यह अर्क संकुचन की शक्ति एवं दर दोनों को 1 मि.ग्रा./मि.ली. की सांद्रता तक घटाने में सक्षम पाया गया। साथ ही यह नॉरएपिनेफ्रिन तथा पोटेशियम द्वारा प्रेरित संकुचनों को भी अवरुद्ध करता है। यह प्रभाव मायोकार्डियम तथा रक्त वाहिकाओं पर प्रत्यक्ष विश्रामकारी क्रिया को दर्शाता है, जो इसकी हाइपोटेंसिव सक्रियता का आधार माना जाता है।

दंत पट्टिका रोधी गुण: इसके फल तथा फूलों में उपस्थित जैवसक्रिय यौगिकों में दंत पट्टिका (डेंटल प्लेक) विरोधी गुण पाए जाते हैं। ये यौगिक बैक्टीरिया की वृद्धि तथा दंत पट्टिका के निर्माण को रोकते हैं, जिससे मौखिक संक्रमणों में कमी आती है और मौखिक स्वच्छता में सुधार होता है। इसी कारण इसका उपयोग पारंपरिक दंत चिकित्सा उत्पादों में एक प्राकृतिक पौध आधारित विकल्प के रूप में किया जाता है।

रोगाणुरोधी गुण: कैर की जड़ की छाल तथा बीजों के एल्कोहोलिक अर्क में प्रबल जीवाणुरोधी एवं कवकरोधी गतिविधियाँ पाई गई हैं। जड़ के डाइक्लोरोमीथेन अर्क ने ग्राम-सकारात्मक जीवाणु स्टाफीलोकोकस ऑरीअस तथा बैसिलस सबटिलिस और ग्राम-नकारात्मक जीवाणु इशरीकिया कोली एवं क्लेबसिएला निमोनिया के विरुद्ध उल्लेखनीय जीवाणुरोधी प्रभाव प्रदर्शित किए हैं।

फलों में पोषक तत्व

कैर के फल पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं। इनका व्यास सामान्यत: 0.7 से 1.5 सेंमीं तक होता है तथा इनमें अनेक बीज पाए जाते हैं। कच्चे फल गहरे हरे रंग के होते हैं और इनका स्वाद खट्टा होता है, जबकि पकने पर फल लाल या गुलाबी रंग के हो जाते हैं और उनका स्वाद मीठा हो जाता है। स्थानीय स्तर पर इन्हें पिंजु या दोहलू के नाम से भी जाना जाता है।

ये खाद्य फल प्रोटीन (लगभग 8.6%), कार्बोहाइड्रेट (लगभग 1.8%) तथा रेशा (लगभग 12.3%) के साथ-साथ विभिन्न खनिज तत्वों से समृद्ध होते हैं। इनके बीजों में वसा की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक पाई जाती है, जिनमें लगभग 20% तेल तथा 1.7% शर्करा होती है। इसके अतिरिक्त कैर के फल -कैरोटीन तथा विटामिन C (लगभग 7.81 मि.ग्रा./100 ग्राम) के अच्छे स्रोत हैं। इनमें कैल्शियम (लगभग 55 मि.ग्रा./100 ग्राम) तथा फॉस्फोरस (लगभग 57 मि.ग्रा./100 ग्राम) भी पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं।

कच्चे हरे फलों का उपयोग ग्रामीण क्षेत्रों में एक महत्वपूर्ण खाद्य स्रोत के रूप में किया जाता है। इन्हें प्राय: महिलाएँ और बच्चे एकत्रित करते हैं तथा सब्जी के रूप में उपयोग करते हैं। इसके सूखे फलों का उपयोग अचार बनाने में भी व्यापक रूप से किया जाता है। मरुस्थलीय क्षेत्रों में कैर की झाड़ियाँ ग्रामीण आजीविका के लिए महत्वपूर्ण आर्थिक भूमिका निभाती हैं।

कैर वृक्ष में पुष्पण अवस्था

हालाँकि बड़े बीज वाले अपरिपक्व फल सामान्यत: उच्च ग्लुकोसिनोलेट की मात्रा के कारण उपभोग के लिए उपयुक्त नहीं माने जाते, जबकि पकने पर लाल या गुलाबी रंग के फल स्वादिष्ट एवं खाद्य बेरी के रूप में खाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त कैर राजस्थान की प्रसिद्ध "पंचकूटा" सब्जी का एक प्रमुख घटक है, जिससे इसके सामाजिक, पारिस्थितिक तथा आर्थिक महत्व में और वृद्धि होती है।

कैर पोषण, स्वास्थ्य संवर्धन तथा शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में सतत विकास के लिए एक अत्यंत संभावनाशील भविष्य संसाधन के रूप में उभर रहा है। इसकी असाधारण सूखा सहनशीलता, उच्च तापमान तथा निम्न उर्वरता वाली मिट्टी में भी अनुकूल वृद्धि क्षमता इसे जलवायु स्मार्ट कृषि के लिए एक उपयुक्त फसल बनाती है।

जैव विविधता में उपयोगी कैर

पोषक तत्वों, जैव सक्रिय यौगिकों तथा औषधीय गुणों से समृद्ध होने के कारण कैर में कार्यात्मक खाद्य पदार्थों, न्यूट्रास्यूटिकल्स तथा विभिन्न मूल्यवर्धित उत्पादों के विकास की व्यापक संभावनाएँ विद्यमान हैं। इसके फाइटोकेमिकल्स, प्रसंस्करण तकनीकों तथा व्यावसायिक उत्पादन पर केंद्रित भावी अनुसंधान खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के साथ-साथ ग्रामीण अर्थव्यवस्था में आयसृजन के नए अवसर प्रदान कर सकते हैं।

कृषिवानिकी प्रणालियों तथा आधुनिक आहार में कैर का समावेशन इस अल्प-उपयोगित फल को शुष्कभूमि पारिस्थितिक तंत्र के सतत विकास में एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में स्थापित कर सकता है।

कैर वृक्ष में फलन अवस्था

पुष्पोत्पादन पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

पुरूषोत्तम कुमार नन्दु[1], रफीखर एम[2], रश्मि सी. आर.[2] और प्रियाकुमारी आई[2]

जलवायु परिवर्तन कृषि के साथ-साथ पुष्पोत्पादन के लिए भी एक गंभीर चुनौती बनता जा रहा है। तापमान, वर्षा तथा अन्य पर्यावरणीय परिस्थितियों में हो रहे परिवर्तन फूलों की खेती को सीधे प्रभावित करते हैं। बढ़ते तापमान के कारण पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है, जिससे फूलों का आकार छोटा हो जाता है, उनकी संख्या कम हो जाती है तथा उनका रंग भी फीका पड़ सकता है। अत्यधिक गर्मी के कारण कई फूलों की सुगंध में भी कमी आ जाती है। इसके अतिरिक्त सूखा, जलभराव तथा मृदा में लवणता की वृद्धि पौधों के लिए जल एवं पोषक तत्वों के अवशोषण को कठिन बना देती है, जिससे उनकी वृद्धि और विकास प्रभावित होते हैं। इन परिस्थितियों का परागण प्रक्रिया पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। परिणामस्वरूप प्राकृतिक फूलों की विविधता में कमी आ रही है तथा पौधों और परागण करने वाले कीटों के बीच स्थापित पारिस्थितिक संतुलन भी प्रभावित हो रहा है। इसके साथ ही बाजार की अनिश्चितता तथा कृत्रिम फूलों की बढ़ती मांग भी पुष्प उत्पादकों की आजीविका पर नकारात्मक प्रभाव डाल रही है।

जलवायु परिवर्तन, कृषि तथा उससे प्राप्त होने वाले उत्पादों को प्रभावित कर विश्व स्तर पर चिंता का विषय बनता जा रहा है। भारत में भी जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव देखा जा रहा है। जल की कमी, तापमान में अचानक वृद्धि तथा बेमौसम वर्षा जैसी परिस्थितियों के कारण किसानों को खेती करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।

निरंतर वनों की कटाई तथा जीवाश्म ईंधनों के अत्यधिक उपयोग के कारण वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड (सीओ$_2$) की सांद्रता लगातार बढ़ रही है। अनुमान है कि इस सदी के अंत तक वायुमंडल में सीओ$_2$ की सांद्रता लगभग दोगुनी हो सकती है।

[1]शोधार्थी, [2]सह प्रध्यापक, पुष्पोत्पादन एवं भू-दृश्यकरण विभाग, कृषि महाविद्यालय, केरल कृषि विश्वविद्यालय, वेल्लयानी, तिरुवनंतपुरम-695 522

प्राकृतिक जलवायु परिस्थितियों में पौधों को अक्सर जलभराव, सूखा, अत्यधिक गर्मी, ठंड तथा मिट्टी की लवणता जैसे अनेक तनावों का सामना करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त पराबैंगनी (यूवी) किरणें, प्रकाश की तीव्रता, बाढ़, गैस उत्सर्जन तथा विभिन्न भौतिक एवं रासायनिक कारक भी पौधों में तनाव की स्थिति उत्पन्न करते हैं। वैज्ञानिक आकलनों के अनुसार अगली सदी तक पृथ्वी के औसत तापमान में लगभग 4-5° से. तक वृद्धि होने की आशंका है।

जलवायु परिवर्तन के कारण वर्तमान परिस्थितियों में विभिन्न फसलों की उत्पादकता में कमी देखी जा रही है, जिसका भविष्य में कृषि पर गंभीर प्रभाव पड़ सकता है। इस परिवर्तन का प्रभाव पुष्पोत्पादन पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है। इसके परिणामस्वरूप फूलों की उपज में लगभग 50% तक कमी, फूलों के आकार में परिवर्तन, असमय फूल आना तथा उनकी सुगंध में कमी जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। इसके अतिरिक्त कीट एवं रोगों के प्रकोप में वृद्धि के कारण बाजार में फूलों की गुणवत्ता तथा कीमतों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

सजावटी फसलों पर प्रभाव

फूलों एवं सजावटी पौधों की खेती पर्यावरण संरक्षण, आर्थिक विकास तथा सौंदर्यात्मक सुधार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। किंतु जलवायु परिवर्तन का प्रभाव इस क्षेत्र पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है। आकस्मिक वर्षा, लंबे समय तक सूखे की स्थिति तथा तापमान में अत्यधिक उतार-चढ़ाव के कारण पौधों की वृद्धि, फूलों का समय पर खिलना तथा उनकी गुणवत्ता प्रभावित हो रही है, जिससे किसानों को आर्थिक हानि का सामना करना पड़ रहा है।

पोषक तत्वों का ह्रास

जलवायु परिवर्तन पौधों में पोषक तत्वों की उपलब्धता को भी प्रभावित करता है। अधिक तापमान के कारण मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की गतिविधि तेज हो जाती है, जिससे पोषक तत्वों के मुक्त होने तथा पौधों द्वारा उनके अवशोषण की प्रक्रिया में परिवर्तन आ सकता है। वर्षा के स्वरूप में बदलाव के कारण पोषक तत्व ह्रास तथा जलभराव की स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है, इससे पौधों के लिए पोषक तत्वों का अवशोषण कठिन हो जाता है। सूखा और बाढ़ जैसी चरम मौसमी घटनाएँ इन समस्याओं को और अधिक बढ़ा देती हैं, जिसके परिणामस्वरूप पोषक तत्वों का असंतुलन उत्पन्न होता है, पौधों पर तनाव बढ़ता है और उनकी उत्पादकता में कमी आ जाती है।

गुलदाउदी पर बढ़ते तापमान का असर

पर्यावरण में लगातार हो रहे परिवर्तनों के कारण पुष्प एवं सजावटी पौधों की खेती के समय में भी धीरे-धीरे बदलाव देखने को मिल रहा है। इसके परिणामस्वरूप पौधों की वृद्धि और उत्पादन में पहले की अपेक्षा कुछ कमी आई है तथा उत्पादन लागत में वृद्धि हो रही है। इन परिस्थितियों के कारण फसल स्वरूप में परिवर्तन, पौध प्रजातियों का स्थानांतरण तथा कुछ प्रजातियों के विलुप्त होने की आशंका भी बढ़ती जा रही है।

कुछ फूल एवं सजावटी पौधों, जैसे अतिविष (एकोनिटम हेटेरोफिलम), क्षीरकाकोली (हिमालयी लिली), सोरबस लनाटा आदि में अक्षांशीय परिवर्तन देखे गए हैं। बढ़ते तापमान का प्रभाव प्रकाश संश्लेषण, पुष्पण तथा फूलों की गुणवत्ता पर भी प्रतिकूल रूप से पड़ता है। कुछ पौधों जैसे हॉर्समिन्ट (अगास्टाके उर्टिसिफोलिया), पेटूनिया, नीला चित्रक (प्लम्बैगो ऑरिकुलेटा) तथा मेडागास्कर पेरिविंकल में 20° से. से 40° से. के तापमान के बीच प्रकाश संश्लेषण की दक्षता में कमी देखी गई है।

इसके विपरीत 14° से. से 26° से. के अपेक्षाकृत अनुकूल तापमान पर गेंदा तथा स्नैपड्रैगन (एंटीरीन्हम मेजस) में फूल खिलने की प्रक्रिया (एन्थेसिस) तेज हो जाती है। किंतु अत्यधिक तापमान के कारण स्नैपड्रैगन तथा बालसम (इम्पेशन्स) में फूलों की कलियों तथा पुष्पों के आकार में सामान्यत: कमी देखी गई है। जब तापमान 40° से. या उससे अधिक हो जाता है, तो एंथोसायनिन के संश्लेषण में कमी आने के कारण फूलों के रंग की तीव्रता भी कम हो जाती है।

उत्पादन परिस्थितियों में कमी

जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप तापमान में वृद्धि तथा जलवायु स्वरूप में बदलाव का कृषि प्रणालियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। तापमान के उच्च अक्षांशों की ओर खिसकने से निम्न अक्षांशीय क्षेत्रों की कृषि व्यवस्था प्रभावित हो रही है। भारत में जल स्रोतों और जल भंडारों का तीव्र गति से ह्रास हो रहा है, जिसके कारण किसानों को पारंपरिक सिंचाई पद्धतियों को छोड़कर जल-संरक्षण आधारित आधुनिक तकनीकों तथा कम जल आवश्यकता वाली फसलों को अपनाने की आवश्यकता पड़ रही है। ग्लेशियरों के निरंतर पिघलने के कारण अनेक प्रमुख नदियों के जलग्रहण क्षेत्रों में दीर्घकालीन जल उपलब्धता में कमी आने की आशंका व्यक्त की जा रही है। इससे भविष्य में कृषि और सिंचाई कार्य गंभीर जल संकट से प्रभावित हो सकते हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार, जलवायु परिवर्तन के प्रभावस्वरूप बढ़ते प्रदूषण, भूमि क्षरण तथा सूखे की स्थिति के कारण पृथ्वी के लगभग तीन-चौथाई स्थलीय क्षेत्र की भूमि गुणवत्ता में कमी दर्ज की गई है, जो वैश्विक खाद्य सुरक्षा के लिए एक गंभीर चुनौती बनती जा रही है।

गुणवत्ता पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन पुष्पीय जैव विविधता के लिए भी एक गंभीर संकट बनता जा रहा है। तापमान और वर्षा के स्वरूप में बदलाव देसी पौधों के वितरण तथा उनकी जनसंख्या को प्रभावित कर सकते हैं, जिसके परिणामस्वरूप प्राकृतिक एवं कृषि आधारित दोनों ही पारिस्थितिक तंत्रों में पुष्पीय संरचना और विविधता में परिवर्तन देखा जा रहा है। वैश्विक उष्मीकरण जलवायु परिवर्तन का एक प्रमुख कारण है, जिसका प्रभाव फूलों के खिलने की अवधि, उनकी सुगंध, पंखुड़ियों के रंग तथा ताजगी पर पड़ता है। एक शोध के अनुसार गुलाब की देसी प्रजातियों की सुगंध में भी पिछले कुछ वर्षों में कमी देखी गई है, जिसका सीधा प्रभाव फूलों की व्यावसायिक खेती पर पड़ रहा है। समग्र रूप से देखा जाए तो जलवायु की आकस्मिक एवं तीव्र परिवर्तनशीलता के कारण पुष्पोत्पादन के साथ-साथ फूलों की गुणवत्ता में भी भारी कमी की आशंका व्यक्त की जा रही है।

सारणी: प्रमुख पुष्पों के उत्पादन हेतु अनुकूल तापमान

पुष्प	अनुकूल तापमान
डहेलिया	20°से. – 22° से.
जरबेरा	लगभग 21° से.
कार्नेशन	15°से. – 25° से.
गुलदाउदी	10°से. – 27° से.
क्रॉसेंड्रा	30°से. – 35° से.
ग्लैडियोलस	लगभग 25° से.
चमेली	15°से. – 24° से.
लिलियम	18°से. – 22° से.
गुलाब	15°से. – 24° से.
गेंदा	18°से. – 20° से.
रजनीगंधा	लगभग 27° से.
ऑर्किड	लगभग 24° से.

रजनीगंधा के व्यावसायिक पुष्पों पर बदलते मौसम का प्रभाव

जलवायु परिवर्तन के प्रमुख कारक

जलवायु में होने वाले परिवर्तन पर्यावरण के कई महत्वपूर्ण घटकों को प्रभावित करते हैं, जिनमें तापमान व्यवस्था, वर्षा का स्वरूप तथा वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों की सांद्रता प्रमुख हैं। इन कारकों में होने वाले बदलाव कृषि एवं पौधों की वृद्धि और विकास पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालते हैं। जलवायु परिवर्तन के प्रमुख कारकों का विवरण इस प्रकार हैं:

तापमान

तापमान पौधों की वृद्धि और विकास को प्रभावित करने वाला एक प्रमुख कारक है। यह प्रकाश संश्लेषण, वाष्पोत्सर्जन, श्वसन, अंकुरण तथा पुष्पण जैसी विभिन्न शारीरिक प्रक्रियाओं को नियंत्रित करता है। तापमान में वृद्धि होने पर (एक निश्चित सीमा तक) प्रकाश संश्लेषण, वाष्पोत्सर्जन तथा श्वसन की दरों में वृद्धि होती है।

सारणी: प्रमुख पुष्प फसलों के लिए प्रकाश की आवश्यकता

पुष्प	प्रकाश की आवश्यकता (लक्स)
गुलदाउदी	22,000 – 27,000
कार्नेशन	लगभग 21,500
जरबेरा	3,500 – 4,000
मोनोपोडियल ऑर्किड	लगभग 25,000
सिम्पोडियल ऑर्किड	40,000 – 45,000
इंका लिली	3,000 – 3,500

परिवेशीय तापमान पुष्प विकास, पुष्प प्रारंभ तथा पुष्पण के समय को भी नियंत्रित करता है, जिससे फसल की गुणवत्ता और पौधे के कार्बन संतुलन पर प्रभाव पड़ता है। अनुकूल तापमान की स्थिति में पौधे अधिकतम कार्बोहाइड्रेट का संश्लेषण कर सकते हैं और सामान्य श्वसन दर बनाए रखते हैं।

उदाहरण के लिए, पैंसी ऑर्किड में 14°से. से 26° से. के बीच का तापमान फूलों के खिलने में लगभग 43 दिनों तक की देरी कर सकता है। इसी प्रकार टिकसीड्स, शास्ता डेजी तथा ब्लैक-आइड सुसान जैसे पौधों में जब तापमान 15° से. से 26° से. तक बढ़ता है, तो फूलों की कलियों के बनने से लेकर उनके खिलने तक की अवधि काफी कम हो जाती है।

प्रकाश

पौधों के लिए प्रकाश एक अत्यंत आवश्यक पर्यावरणीय कारक है, क्योंकि यह कार्बन चयापचय को नियंत्रित करता है तथा अंकुरण से लेकर परिपक्वता तक पौधों की विभिन्न शारीरिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करता है। प्रकाश की उपस्थिति में पौधे न केवल प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया संचालित करते हैं, बल्कि यह पौधों के विकास के लिए एक संवेदनशील नियंत्रक कारक के रूप में भी कार्य करता है।

प्रकाश के संपर्क में आने पर हरितलवक (क्लोरोप्लास्ट) का निर्माण होता है, प्रारंभिक अंकुर स्थापना को प्रोत्साहन मिलता है तथा बीजों को सुषुप्तावस्था से बाहर निकलने में सहायता मिलती है। पौधे 400-700 नैनोमीटर तरंगदैर्ध्य के प्रकाश का उपयोग प्रकाश संश्लेषण के लिए करते हैं, जिसे प्रकाश संश्लेषणीय सक्रिय विकिरण कहा जाता है। इस स्पेक्ट्रम में लाल प्रकाश का अवशोषण सबसे अधिक प्रभावी माना जाता है।

प्रकाश संश्लेषण की इस प्रक्रिया में विभिन्न वर्णक (पिगमेंट) भाग लेते हैं। कैरोटिनॉयड मुख्य रूप से नीले प्रकाश को अवशोषित करते हैं, जबकि क्लोरोफिल-'ए' और क्लोरोफिल-बी अपने विशिष्ट शिखर क्षेत्रों पर प्रकाश को तीव्रता से अवशोषित करते हैं। एन्थोसाइनिन अतिरिक्त विकिरण को

सापेक्ष आर्द्रता

सापेक्ष आर्द्रता पौधों के जल संतुलन तथा प्रकाश संश्लेषण को गहराई से प्रभावित करती है। उपयुक्त सापेक्ष आर्द्रता रंध्रों (स्टोमाटा) को खुला बनाए रखने में सहायक होती है, जिससे कार्बन डाइऑक्साइड का अवशोषण बढ़ता है और जल की अत्यधिक हानि कम होती है। इसके परिणामस्वरूप पौधों की वृद्धि एवं विकास सुचारु रूप से होता है। कम सापेक्ष आर्द्रता की स्थिति में रंध्रीय प्रतिरोध बढ़ जाता है, जिससे प्रकाश संश्लेषण की दर घट जाती है। इसके विपरीत अत्यधिक सापेक्ष आर्द्रता वाष्पोत्सर्जन की दर को कम कर देती है, जिससे पौधों द्वारा पोषक तत्वों का अवशोषण प्रभावित होता है और पौधों की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

सारणी: प्रमुख पुष्प फसलों के लिए उपयुक्त सापेक्ष आर्द्रता

पुष्प	सापेक्ष आर्द्रता (%)
मोनोपोडियल ऑर्किड	80 - 85
सिम्पोडियल ऑर्किड	45 - 55
गुलदाउदी	60 - 70
कार्नेशन	60 - 65
जरबेरा	50 - 60
चाइना एस्टर	50 - 60
एन्थूरियम	80 - 90
बर्ड ऑफ पैराडाइज	लगभग 50
हेलिकोनिया	40 - 50

छानकर तथा प्रकाश अवरोध को कम करके पौधों के ऊतकों की रक्षा करते हैं। इसके परिणामस्वरूप तीव्र प्रकाश परिस्थितियों में भी पौधों की वृद्धि संतुलित बनी रहती है।

कार्बन डाइऑक्साइड

कार्बन डाइऑक्साइड पौधों की वृद्धि एवं शारीरिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक है। वायुमंडल में सीओ$_2$ की बढ़ी हुई सांद्रता पौधों की वाष्पोत्सर्जन दर को लगभग 20-40% तक कम कर सकती है, जिससे जल उपयोग दक्षता में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त यह पॉलीएमीन के संश्लेषण को भी प्रोत्साहित करती है, जो लवणता जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों में तनाव-प्रेरित वृद्धावस्था को विलंबित करने में सहायक होते हैं।

हालाँकि कुछ पुष्प फसलों, जैसे गुलदाउदी और जरबेरा, में सीओ$_2$ की अत्यधिक मात्रा क्लोरोफिल के अपघटन को बढ़ा सकती है, जिसके परिणामस्वरूप पत्तियाँ तथा फूल पीले पड़ने लगते हैं। इसके अलावा सीओ$_2$ की अधिकता के कारण कुछ पौधों

सारणी: प्रमुख पुष्प फसलों के लिए आवश्यक सीओ$_2$ मात्रा

पुष्प	सीओ$_2$ मात्रा (पीपीएम)
बोगनविलिया	700 - 900
कार्नेशन	1000 - 1500
गुलदाउदी	700 - 900
जरबेरा	1600 - 2200
गुड़हल	1000 - 1500
पेटूनिया	1000 - 1500
गुलाब	1000 - 1500

असमय वर्षा से पत्थरचट्टा के पुष्प एवं पौधों का सूखना

में जड़-तना अनुपात में भी परिवर्तन देखा जाता है, क्योंकि बढ़ी हुई सीओ$_2$ की स्थिति में पौधे जल एवं पोषक तत्वों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए जड़ों के विकास को अपेक्षाकृत अधिक बढ़ा देते हैं।

सूखे का प्रभाव

पौधों को जल की कमी तथा बढ़ते तापमान के कारण सूखे की स्थिति का सामना करना पड़ता है। सूखा सामान्यत: अल्पकालीन, दीर्घकालीन तथा स्थायी प्रकार का हो सकता है, जो पौधों की वृद्धि, विकास तथा उपज को गंभीर रूप से प्रभावित करता है।

सूखे की स्थिति में पौधों की कलियाँ झड़ने लगती हैं, फूलों का उत्पादन घट जाता है तथा परागण, बीज स्थापना और उपज विशेष रूप से प्रजनन अवस्था में प्रभावित होती है। इसके अतिरिक्त परागकणों की जीवित रहने की क्षमता कम हो जाती है, फूलों की आकर्षण शक्ति तथा मधुरस स्राव में कमी आती है। सूखे की परिस्थितियों में पौधों की पत्तियों में पीलापन दिखाई देता है तथा कीट एवं रोगों का प्रकोप भी बढ़ जाता है।

सूखे के प्रमुख कारणों में वैश्विक तापमान में वृद्धि, वर्षा की कमी तथा मानसून के स्वरूप में परिवर्तन शामिल हैं, जिनके कारण पौधों का समुचित विकास नहीं हो पाता।

वैश्विक बाजार पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से फूलों के उत्पादन में निरंतर कमी देखी जा रही है, जिसके कारण वैश्विक बाजार धीरे-धीरे प्राकृतिक फूलों से हटकर कृत्रिम फूलों की ओर बढ़ रहा है। कम कीमत तथा आसानी से उपलब्धता के कारण उपभोक्ता कृत्रिम फूलों की ओर अधिक आकर्षित हो रहे हैं, जो एक चिंताजनक प्रवृत्ति है।

भारत भी तेजी से कृत्रिम फूलों और सजावटी उत्पादों का एक बड़ा बाजार बनता जा रहा है, जहाँ वर्तमान में इनका बाजार लगभग 350 मिलियन डॉलर तक पहुँच चुका है। इसका नकारात्मक प्रभाव न केवल फूल उत्पादकों की आय पर पड़ रहा है, बल्कि पर्यावरण पर भी पड़ रहा है। आजकल पारिवारिक, सामाजिक तथा कार्यालीय आयोजनों में कृत्रिम फूलों का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है, जो भविष्य में पर्यावरणीय दृष्टि से एक गंभीर समस्या बन सकता है।

जलवायु परिवर्तन पुष्पोद्योग के लिए एक गंभीर चुनौती के रूप में उभर रहा है। इसके परिणामस्वरूप फूलों की पैदावार, वृद्धि अवधि, पौधों के कठोर क्षेत्र, जल उपलब्धता, कीट एवं रोगों का प्रकोप, पुष्पीय जैवविविधता तथा इससे जुड़ी आर्थिक परिस्थितियाँ प्रभावित हो रही हैं। जलवायु परिवर्तन के विभिन्न घटक, जैसे तापमान, प्रकाश, सापेक्ष आर्द्रता तथा कार्बन डाइऑक्साइड, फूलों की वृद्धि, विकास और उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन कारकों में होने वाले परिवर्तन पुष्प फसलों की गुणवत्ता, उपज तथा स्थिरता पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालते हैं।

स्वस्थ पौध उत्पादन हेतु सनकन नर्सरी

निखिल शर्मा[1], अजय कुमार जोशी[3], सविता और **अंशु कुमार पाण्डेय[4]**

सनकन नर्सरी तकनीक कठोर सर्दी, पाला, घना कोहरा, धुंध तथा अन्य प्रतिकूल मौसम परिस्थितियों में सब्जियों एवं फूलों की स्वस्थ और गुणवत्तापूर्ण नर्सरी तैयार करने की एक प्रभावी, किफायती तथा व्यावहारिक विधि है। इस तकनीक में भूमि की सतह से नीचे नर्सरी क्यारी तैयार करके उसे पारदर्शी पॉलिथीन शीट से ढक दिया जाता है। इससे क्यारी के अंदर अनुकूल तापमान और आर्द्रता बनी रहती है। परिणामस्वरूप बीजों का शीघ्र, समान तथा अधिक प्रतिशत में अंकुरण होता है और पौधे मजबूत, सशक्त तथा रोग-कीटों के प्रकोप से अपेक्षाकृत सुरक्षित रहते हैं। पारंपरिक खुली नर्सरी की तुलना में यह समय की बचत करती है और नर्सरी असफल होने की आशंका को भी कम करती है। इसके माध्यम से किसानों को समयपूर्व नर्सरी और अग्रिम फसल प्राप्त होती है, जिससे बाजार में बेहतर मूल्य मिल सकता है और आय में वृद्धि होती है। सीमित लागत, सरल निर्माण प्रक्रिया तथा स्थानीय संसाधनों के उपयोग के कारण यह तकनीक छोटे और मध्यम किसानों के लिए विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होती है। बदलती जलवायु परिस्थितियों में यह तकनीक सतत और सुरक्षित सब्जी एवं फूल उत्पादन की दिशा में एक महत्वपूर्ण विकल्प प्रदान करती है।

वर्तमान समय में शहरों तथा गांवों के आसपास उद्योगों और शहरीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण वर्ष भर सब्जियों, फूलों, सजावटी पौधों तथा नर्सरी पौधों की मांग में निरंतर वृद्धि हो रही है। ग्रीष्म ऋतु की सब्जियों की सफल खेती के लिए कठोर शीत ऋतु के दौरान स्वस्थ और मजबूत नर्सरी तैयार करना अत्यंत आवश्यक होता है। मैदानी क्षेत्रों में दिसंबर और जनवरी के महीनों में घना कोहरा पड़ता है, जिससे नर्सरी में लगे कोमल पौधों को ठंड से नुकसान पहुंच सकता है।

इसी समस्या के समाधान के लिए कोहरे की स्थिति में नर्सरी उगाने हेतु विभिन्न तकनीकों का प्रयोग किया गया, जिनमें सनकन नर्सरी तकनीक एक प्रभावी विकल्प के रूप में सामने आई है। सब्जियों एवं फूलों के पौधों की प्रारंभिक नर्सरी तैयार करने के लिए विकसित यह तकनीक कोहरे और ठंड की परिस्थितियों में भी अच्छे परिणाम देती है। इस तकनीक के उपयोग से बीजों के अंकुरण में वृद्धि होती है तथा अंकुरण दर में भी सुधार होता है।

सनकन नर्सरी एक किफायती तकनीक है, जो समय की बचत करती है और किसानों को ग्रीष्म ऋतु की सब्जियों एवं फूलों की नर्सरी की नियमित, सतत और विश्वसनीय आपूर्ति सुनिश्चित करने में सहायक होती है। इस तकनीक में नर्सरी क्यारी जमीन की सतह से लगभग 1 से 1.5 फीट नीचे बनाए जाते हैं। ठंडे क्षेत्रों में विशेष रूप से दिसंबर-जनवरी के महीनों में पौध तैयार करने के लिए यह तकनीक अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती है।

विविधता एवं आय वृद्धि

सब्जियों की खेती से मिलने वाले

[1,4]शोधार्थी, [2]अधिष्ठाता, [3]सहायक प्राध्यापक, वीर चंद्र सिंह गढ़वाली उत्तराखंड औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, भरसार, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड-246 123

आकर्षक लाभ के कारण इनके क्षेत्रफल में निरंतर वृद्धि हो रही है। किसान अनाज तथा अन्य पारंपरिक फसलों की अपेक्षा सब्जियों की खेती की ओर अधिक आकर्षित हो रहे हैं और ऐसी सब्जियों के उत्पादन पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं जिनकी पूरे वर्ष निरंतर मांग बनी रहती है। इससे किसानों को अधिक लाभ प्राप्त होता है और उनकी आय में भी वृद्धि होती है।

हाल के वर्षों में यह देखा गया है कि व्यापक रूप से अनुकूल संकर किस्मों तथा संरक्षित खेती तकनीकों के विकास के कारण अधिकांश सब्जियों की खेती अब उनके सामान्य मौसम से बाहर भी की जा रही है। हालांकि उन्नत तकनीकों की उपलब्धता के बावजूद ग्लोबल वार्मिंग कृषि वैज्ञानिकों और शोधकर्ताओं के लिए नई चुनौतियाँ प्रस्तुत कर रही है। तापमान में उतार-चढ़ाव, अनियमित वर्षा तथा छोटे होते मौसमों के कारण सब्जियों की खेती करना कठिन होता जा रहा है।

कठोर और अप्रत्याशित गर्मियों से निपटने के लिए ग्रीष्मकालीन सब्जियों की खेती का समय वसंत ऋतु की ओर बढ़ाना आवश्यक हो गया है। इसके लिए भीषण सर्दियों में टमाटर, मिर्च, शिमला मिर्च, बैंगन तथा कद्दूवर्गीय सब्जियों की नर्सरी तैयार करना जरूरी हो जाता है। पॉली टनल और प्राकृतिक रूप से हवादार पॉलीहाउस जैसी तकनीकें उपलब्ध हैं, जिनसे पौधों का अंकुरण और प्रारंभिक विकास संभव हो पाता है। फिर भी खुले खेतों में पॉली कल्चर नर्सरी का रोपण कई बार सफल नहीं हो पाता।

शीट से ढकी पौध नर्सरी

दूसरी ओर, प्राकृतिक रूप से हवादार पॉलीहाउस जैसी संरचनाएँ छोटे और मध्यम किसानों की पहुंच से बाहर होती हैं। इन चुनौतियों के कारण ऐसी नई और प्रभावी तकनीक की आवश्यकता महसूस की गई, जो हिमालय के मैदानी और तलहटी क्षेत्रों में पड़ने वाले घने कोहरे और कठोर सर्दियों के दौरान भी उच्च गुणवत्ता वाली स्वस्थ पौध तैयार करने में सहायक हो।

सनकन नर्सरी क्यारी तैयार करने की विधि

- नर्सरी क्यारी किसी भी लंबाई की बनाई जा सकती है, परंतु सामान्यत: 3 मीटर लंबी, 1 मीटर चौड़ी तथा लगभग 1 फीट गहरी खाई तैयार की जाती है।
- खाई के नीचे लगभग 5-10 सेंटीमीटर ऊंचाई का उठी हुआ क्यारी तैयार करें। क्यारी बनाने के लिए मिट्टी खाई के बाहर से नहीं लानी चाहिए। क्यारी तैयार करते समय इसमें गोबर की खाद (लगभग 25 किलोग्राम) और अकार्बनिक उर्वरक मिश्रण (लगभग 100 ग्राम) मिलाया जा सकता है। गोबर की खाद का उपयोग करते समय सावधानी बरतनी चाहिए। क्यारी

लाभ

- इस तकनीक में ठंड के समय बेमौसमी फसलों के बीजों का अंकुरण सामान्यत: 10-15 दिनों में हो जाता है, जबकि प्राकृतिक रूप से हवादार पॉलीहाउस में 25-30 दिन लगते हैं। खुले वातावरण में कई बार अंकुरण नहीं हो पाता।
- इसमें बीजों का अंकुरण प्रतिशत अधिक होता है।
- इस तकनीक से तैयार की गई पौध स्वस्थ, मजबूत और अधिक वृद्धि क्षमता वाली होती है।
- पानी और श्रम की बचत होती है, क्योंकि इसमें सामान्यत: बीजाई के समय ही सिंचाई की आवश्यकता होती है।
- इसमें कीट एवं रोगों के संक्रमण की आशंका अपेक्षाकृत कम रहती है।
- अन्य विधियों की तुलना में इसकी लागत काफी कम होती है।
- एक साधारण किसान भी इसे आसानी से तैयार कर सकता है और नर्सरी उत्पादन का व्यवसाय शुरू कर सकता है। यह तकनीक व्यावसायिक नर्सरी उत्पादन के लिए भी उपयुक्त है।
- यह बेमौसमी पौध उत्पादन तथा अगेती फसल प्राप्त करने में सहायक होती है, जिससे खेत खाली रहने की समस्या कम होती है और बाजार में फसल का बेहतर मूल्य मिलता है।

नर्सरी हेतु तैयार क्यारी

सिफारिशें

- सनकन क्यारी बनाते समय ऐसे स्थान का चयन करें, जहाँ जलभराव न होता हो तथा पर्याप्त सूर्य प्रकाश प्राप्त होता हो।
- सनकन क्यारी तैयार करते समय अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद का ही प्रयोग करें, जिसमें सफेद लट या अन्य कीट न हों।
- सनकन नर्सरी में उपयोग की जाने वाली पॉलिथीन शीट में किसी प्रकार का छेद नहीं होना चाहिए। इसे चारों ओर से अच्छी तरह बंद करें, ताकि ठंडी हवा का प्रवेश न हो सके।
- यदि चूहों के बिल हों तो उन्हें अच्छी तरह बंद कर दें या आवश्यकता पड़ने पर नयी सनकन क्यारी तैयार करें। साथ ही चूहों के नियंत्रण के लिए उचित दवाओं का उपयोग करें।
- सनकन को खोलने के बाद पुनः ठीक प्रकार से बंद करें तथा ऐसी मजबूत पॉलिथीन शीट का उपयोग करें, जो कार्य के दौरान आसानी से फटे नहीं।

बर्फबारी में भी सुरक्षित सनकन नर्सरी

तैयार करने से कम से कम 15 दिन पहले गोबर की खाद को फफूंदनाशक ट्राइकोडर्मा (1 किलोग्राम प्रति 100 किलोग्राम गोबर) से उपचारित करना लाभकारी होता है।

- बीजों को बुआई से पहले कैप्टॉन या बाविस्टिन से उपचारित करें। इसके बाद 4 सेंटीमीटर की दूरी पर कतारों में बुआई करें तथा बीजों को उसी मिट्टी से हल्के से ढक दें।
- क्यारी के अतिरिक्त सनकन नर्सरी में पॉलीबैग या प्रो ट्रे में भी बीजों की बुआई की जा सकती है।
- बुआई के बाद क्यारी को मिट्टी की क्षेत्रीय क्षमता तक पानी देकर अच्छी तरह भिगो दें।
- इसके बाद खाई को सफेद अथवा मुख्यतः पारदर्शी पॉलिथीन शीट से ढक दें और दोनों ओर ढलान बना दें। बीच में लंबवत (सीधे) बांस, पाइप या लकड़ी का सहारा दिया जा सकता है, ताकि पॉलिथीन शीट ऊपर से सहारा लेकर टिकी रहे।
- पॉलिथीन शीट को चारों ओर से मिट्टी की सहायता से अच्छी तरह दबाकर हवा बंद कर दें।
- बुआई के लगभग एक सप्ताह बाद या दसवें दिन से तथा सर्दियों में अधिकतम 20 दिनों के भीतर पॉलिथीन शीट के माध्यम से बीजों के अंकुरण का निरीक्षण करना प्रारंभ करें।
- अंकुरण पूर्ण होने के बाद और पौध में 4 पत्तियों की अवस्था आने तक आवश्यकतानुसार सिंचाई को नियंत्रित किया जा सकता है।
- धूप वाले दिनों में तापमान अधिक होने पर पॉलिथीन कवर को अस्थायी रूप से हटाया जा सकता है, जिससे पौधों को पर्याप्त वायु और प्रकाश मिल सके।

शीट ढकने हेतु प्रबंधन

सनकन नर्सरी क्यारी तकनीक कठोर शीत ऋतु, घने कोहरे तथा प्रतिकूल मौसम परिस्थितियों में भी ग्रीष्मकालीन सब्जियों एवं फूलों की स्वस्थ, सशक्त और गुणवत्तापूर्ण नर्सरी तैयार करने की एक प्रभावी, किफायती तथा व्यावहारिक विधि है। यह तकनीक बीजों के शीघ्र तथा अधिक प्रतिशत अंकुरण में सहायक होने के साथ-साथ पौधों को ठंड, रोगों और कीटों के प्रकोप से भी सुरक्षित रखने में मदद करती है।

सीमित लागत में अधिक लाभ, अगेती फसल की प्राप्ति तथा बाजार में बेहतर मूल्य मिलने के कारण यह तकनीक छोटे एवं मध्यम किसानों के लिए आय बढ़ाने का एक सशक्त माध्यम बन सकती है। साथ ही, बदलते जलवायु परिदृश्य में यह संरक्षित खेती की दिशा में एक उपयोगी विकल्प प्रस्तुत करती है।

अतः इस तकनीक को व्यापक स्तर पर अपनाकर किसान वर्ष भर सब्जियों एवं फूलों की नर्सरी की नियमित आपूर्ति सुनिश्चित कर सकते हैं तथा कृषि प्रणाली में स्थायित्व और आर्थिक सुदृढ़ता प्राप्त कर सकते हैं।

उपाय

आम में अनियमित फलन की चुनौती का प्रबंधन

संजीव कुमार और **सी.एस. आजाद**

आम में अनियमित या एकान्तरित फलन बागवानी उत्पादन और किसानों की आय को प्रभावित करने वाली एक प्रमुख समस्या है। इसमें पेड़ एक वर्ष अधिक फल (ऑन ईयर) देते हैं, जबकि अगले वर्ष फलन बहुत कम या लगभग नहीं होता (ऑफ ईयर)। इसका मुख्य कारण पौधों में शारीरिक और प्रजननात्मक वृद्धि के बीच असंतुलन, कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात में गड़बड़ी, हार्मोनल असंतुलन, परागण की कमी तथा प्रकाश, तापमान, नमी और कीट-रोग जैसे पर्यावरणीय कारक होते हैं। इस समस्या के समाधान के लिए समय पर छंटाई, फूलों का विरलीकरण, वलयन, मूल कृन्तन, संतुलित पोषण प्रबंधन, पैक्लोब्यूट्राजोल जैसे वृद्धि नियंत्रकों का उपयोग तथा नियमित फलन देने वाली किस्मों का चयन उपयोगी उपाय हैं। इन तकनीकों के समन्वित प्रयोग से आम में नियमित और अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

आम के वृक्षों में अनियमित या एकान्तरित फलन एक गंभीर समस्या है, जो बागवानी उत्पादन तथा किसानों की आय को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है। इसका संबंध मुख्यत: वृक्ष की वानस्पतिक (शारीरिक) और प्रजननात्मक वृद्धि के बीच असंतुलन से होता है तथा यह समस्या विभिन्न किस्मों में अलग-अलग स्तर पर पाई जाती है। फलन के लिए पुष्पण का विकास अत्यंत आवश्यक होता है, और आम में यह एक जटिल जैविक प्रक्रिया मानी जाती है।

[1]सहायक प्राध्यापक-सह-कनिष्ठ वैज्ञानिक, पादप रोग विभाग; [2]बिहार कृषि महाविद्यालय, सबौर

उत्तर, पूर्व और मध्य भारत की कई व्यावसायिक किस्मों में एकान्तरित फलन की समस्या अधिक गंभीर होती है, जबकि दक्षिण भारत की किस्मों में सामान्यत: अपेक्षाकृत नियमित फलन देखा जाता है। इस समस्या के प्रमुख कारणों में कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात में असंतुलन, हार्मोनल असंतुलन तथा विभिन्न मौसमी और पर्यावरणीय परिस्थितियाँ शामिल हैं।

एकान्तरित फलन के कारण

आम में एकान्तरित फलन के प्रमुख कारणों को मुख्यत: आंतरिक कारणों के रूप में समझा जा सकता है, जो पौधे की जैविक एवं शारीरिक प्रक्रियाओं से संबंधित होते हैं।

समाधान

आम के वृक्षों से सामान्यत: प्रत्येक वर्ष अधिक फलन की अपेक्षा की जाती है, किंतु व्यवहार में ऐसा हमेशा संभव नहीं हो पाता। आम के वृक्षों की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि एक वर्ष वे अत्यधिक फलन करते हैं (ऑन ईयर), जबकि अगले वर्ष फलन बहुत कम या लगभग नहीं होता (ऑफ ईयर)। लगभग 10 वर्ष तक के युवा पौधों में यह समस्या सामान्यत: नहीं पाई जाती, क्योंकि उस अवस्था में पौधों में वानस्पतिक वृद्धि और फलन दोनों के लिए पर्याप्त ऊर्जा होती है। किंतु जैसे-जैसे वृक्ष की आयु बढ़ती है, उसकी ऊर्जा और पोषण क्षमता में कमी आने लगती है, जिसके परिणामस्वरूप एकान्तरित फलन की समस्या अधिक स्पष्ट हो जाती है। इस समस्या के प्रबंधन के लिए रासायनिक छिड़काव, धुआँ देना, उचित छंटाई तथा अन्य वैज्ञानिक बागवानी उपायों का प्रयोग किया जाता है।

आंतरिक कारण

फलन की आदत: यदि किसी वर्ष आम के वृक्ष में फल अग्र कलिकाओं (टर्मिनल बड्स) पर लगते हैं, तो अगले वर्ष वही कलिकाएँ प्ररोह (शूट्स) में परिवर्तित हो जाती हैं। परिणामस्वरूप उस वर्ष पेड़ में फलन नहीं हो पाता। सामान्यत: आम में फल केवल अग्र कलिकाओं पर ही विकसित होते हैं।

नई वृद्धि की प्रवृत्ति: पश्चिमी भारत में आम के पौधे वर्ष में लगभग तीन बार नई वृद्धि करते हैं, जबकि उत्तरी भारत में यह वृद्धि सामान्यत: दो बार (मार्च-अप्रैल तथा जुलाई-अगस्त) होती है। नई वृद्धि प्राय: ऑफ ईयर में अधिक होती है, जबकि ऑन ईयर में इन अवधियों के दौरान नई वृद्धि नहीं के बराबर होती है, जिससे अगले वर्ष के फलन पर प्रभाव पड़ता है।

नर और मादा फूलों का अनुपात: जिन किस्मों में मादा फूलों की अपेक्षा नर फूलों की संख्या अधिक होती है, उनमें फलन तो हर वर्ष होता है, लेकिन बहुत कम मात्रा में। वहीं जिन किस्मों में यह अनुपात असंतुलित होता है, उनमें एक वर्ष अधिक फलन और अगले वर्ष बहुत कम या लगभग नहीं के बराबर फलन देखा जाता है।

परागण की समस्या: आम में परागण मुख्य रूप से हवा और कीटों के माध्यम से होता है। यदि किसी

कारणवश यह प्रक्रिया बाधित हो जाए, तो फलन प्रभावित हो जाता है। यहाँ तक कि कई बार लगभग 50% उभयलिंगी फूल भी फल में परिवर्तित नहीं हो पाते।

भ्रूण का नष्ट होना: कभी-कभी भ्रूण (एंब्रियो) के नष्ट हो जाने के कारण भी फल का विकास रुक जाता है, जिससे फलन प्रभावित होता है और फल देने वाला वर्ष भी कम फलन वाले वर्ष में बदल सकता है।

कार्बोहाइड्रेट और नाइट्रोजन का अनुपात: जब पौधों में कार्बोहाइड्रेट की कमी तथा नाइट्रोजन की अधिकता होती है, तो वानस्पतिक वृद्धि अधिक होती है, लेकिन फलन कम हो जाता है। नियमित फलन के लिए पौधों में कार्बोहाइड्रेट और नाइट्रोजन का संतुलित अनुपात आवश्यक होता है।

उर्वरक मात्रा: आम में पुष्पण और फलन के लिए ऑक्सिन तथा जिब्रेलिन जैसे उर्वरकों की उपयुक्त मात्रा आवश्यक होती है। ये उर्वरक पत्तियों से निकलकर फूलों के विकास को प्रोत्साहित करते हैं। यदि इन उर्वरकों की मात्रा कम हो जाए, तो फूलों का निर्माण कम होता है और फलन कमजोर हो जाता है।

नियंत्रण

कर्षण क्रियाएँ: आम के वृक्षों में संतुलित वृद्धि और अच्छे फलन के लिए कर्षण क्रियाएँ अत्यंत आवश्यक हैं। इनमें जुताई, गुड़ाई, खाद का प्रयोग और सिंचाई प्रमुख हैं। जुताई से मिट्टी भुरभुरी होकर जड़ों को पर्याप्त वायु मिलती है। गोबर खाद तथा रासायनिक उर्वरकों का संतुलित प्रयोग पौधों को आवश्यक पोषण प्रदान करता है, जबकि उचित सिंचाई पौधों की ऊर्जा और स्वास्थ्य बनाए रखने में सहायक होती है।

फूलों का विरलीकरण: ऑन ईयर में अत्यधिक फूल और छोटे फल बनने पर उनमें से कुछ को हटाना उपयोगी होता है। इससे पौधे की ऊर्जा बचती है और नई शाखाओं तथा पुष्प कलियों के विकास में सहायता मिलती है, जिससे अगले वर्ष भी संतुलित फलन संभव होता है।

वलयन (गर्डलिंग): इस तकनीक में अगस्त माह में शाखा के चारों ओर लगभग 1-1.5 सें.मी. चौड़ी छाल की पतली परत हटाई जाती है। इससे शाखा में कार्बोहाइड्रेट का संचय बढ़ता है और पुष्पण तथा फलन को प्रोत्साहन मिलता है।

मूल कृन्तन: इस प्रक्रिया में तने के चारों ओर लगभग 60-70 सें.मी. दूरी तक 10-15 सें.मी. गहराई तक मिट्टी हटाकर छोटी जड़ों की छंटाई की जाती है। दूसरी विधि में पौधे की फैलाव सीमा पर 75-90 सें.मी. गहरी खाई बनाकर पार्श्व जड़ों को काट दिया जाता है। यह कार्य पुष्पण से लगभग एक माह पहले किया जाता है। इसके बाद खाई को खाद और मिट्टी के मिश्रण से भरकर हल्की सिंचाई दी जाती है।

दोहरा रोपण: दोहरा रोपण एक उन्नत तकनीक है, जिसमें अच्छी उत्पादक शाखा को मूल पौधे पर कलम करके लगाया जाता है। इससे पौधे की अत्यधिक वानस्पतिक वृद्धि नियंत्रित होती है और पेड़ ठिगना होकर नियमित फलन देने लगता है।

धुआँ देना: कुछ दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में पुष्पण को प्रोत्साहित करने के लिए धुआँ देने की तकनीक अपनाई जाती है। इसमें पौधों को कुछ दिनों तक नियंत्रित रूप से धुआँ दिया जाता है, जिससे पौधे में कार्बोहाइड्रेट संचय और हार्मोनल संतुलन प्रभावित होकर पुष्पन को बढ़ावा मिलता है।

संकरण: संकरण के माध्यम से ऐसी किस्में विकसित की गई हैं जिनमें नियमित फलन की प्रवृत्ति अधिक होती है। आम्रपाली, बंगनपल्ली और नीलम जैसी किस्में अपेक्षाकृत नियमित और स्थिर फलन देने के लिए जानी जाती हैं, इसलिए व्यावसायिक बागवानी में इनका चयन लाभकारी होता है।

उर्वरक प्रयोग: पौधों की वृद्धि और पुष्पण को नियंत्रित करने के लिए पैक्लोब्यूट्राजोल जैसे वृद्धि नियामकों का उपयोग किया जाता है। यह जिब्रेलिन के प्रभाव को कम कर अत्यधिक वानस्पतिक वृद्धि को नियंत्रित करता है और पौधे की ऊर्जा को पुष्पण तथा फलन की ओर निर्देशित करता है। उचित मात्रा में इसके प्रयोग से आम में नियमित फलन प्राप्त किया जा सकता है।

आम में एकान्तरित फलन उत्पादन की स्थिरता और किसानों की आय के लिए बड़ी चुनौती है। इसका समाधान केवल एक तकनीक से नहीं, बल्कि संतुलित पोषण, छंटाई, वलयन, मूल कृन्तन, फूलों का विरलीकरण और कीट-रोग नियंत्रण जैसी विभिन्न रणनीतियों के समन्वित उपयोग से संभव है। पैक्लोब्यूट्राजोल तथा नियमित फलन देने वाली किस्मों का चयन भी प्रभावी सिद्ध होता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण और समय पर प्रबंधन अपनाकर इस समस्या को काफी हद तक कम किया जा सकता है और आम उत्पादन को स्थिर एवं लाभकारी बनाया जा सकता है।

बाह्य कारण

- **प्रकाश:** फलन के लिए प्रकाश की पर्याप्त तीव्रता और अवधि आवश्यक होती है। प्रकाश की उपस्थिति में ही प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया होती है, जिससे कार्बोहाइड्रेट का निर्माण होता है, जो फलन के लिए आवश्यक है। अत्यधिक घने बागों में जहाँ पर्याप्त प्रकाश नहीं पहुँच पाता, वहाँ फलन की मात्रा कम हो जाती है।
- **तापमान:** आम के सफल फलन के लिए लगभग 21-27° से. तापमान उपयुक्त माना जाता है। अत्यधिक अधिक या कम तापमान होने पर पुष्पण प्रभावित होता है और फूलों की संख्या घट जाती है।
- **आर्द्रता और वर्षा:** फूल आने की अवधि में अत्यधिक नमी या वर्षा होने से परागण की प्रक्रिया प्रभावित होती है। इसके कारण कई फूल झड़ जाते हैं और फलन कम हो जाता है।
- **तेज हवाएँ:** तेज हवाएँ और आँधियाँ फूलों तथा छोटे फलों को नुकसान पहुँचाती हैं, जिससे फलन का एक बड़ा भाग नष्ट हो सकता है।
- **कीट और रोग:** माहूं, थ्रिप्स आदि कीट तथा एन्थ्रेक्नोज और पाउडरी मिल्ड्यू जैसे रोग फूलों और फलों को नुकसान पहुँचाते हैं। इनके प्रकोप से पेड़ की शक्ति कमजोर हो जाती है और फलन प्रभावित होता है।

अन्य प्रबंधन

उद्यान में संतुलित पोषण प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है। पौधों को नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश के साथ-साथ सूक्ष्म पोषक तत्व भी उचित मात्रा में देने चाहिए। पौधों के बीच उचित दूरी रखनी चाहिए ताकि उन्हें पर्याप्त प्रकाश और वायु मिल सके। बाग के चारों ओर वायु अवरोधक वृक्ष लगाने से तेज हवाओं से सुरक्षा मिलती है। समय-समय पर छंटाई करने से पौधे खुले रहते हैं और वायु संचार तथा प्रकाश की उपलब्धता बढ़ती है।

सब्जियों में जड़गाँठ सूत्रकृमि का प्रबंधन

विकास कुमार आलोरिया[1], प्रकाश सिंगाठिया[2], प्रज्ञा उइके[1], जयंत कुमार महलिक[1] और रूपक जैना[3]

जड़गाँठ सूत्रकृमि (मेलोइडोगाइन वंश) भारत में सब्जी उत्पादन को प्रभावित करने वाले सबसे व्यापक और विनाशकारी रोगजनकों में से एक हैं। ये सूक्ष्म मृदाजनित कृमि टमाटर, बैंगन, भिंडी, खीरा और मिर्च सहित अनेक सब्जी फसलों की जड़ प्रणाली को प्रभावित करते हैं, जिससे उपज में भारी कमी आती है। कई बार किसान इस नुकसान का सही आकलन नहीं कर पाते, जिसके कारण इसकी गंभीरता को कम करके आँका जाता है। इस सूत्रकृमि (मेलोइडोगाइन प्रजातियाँ) के प्रबंधन के लिए मुख्यत: संवर्धित, भौतिक, जैविक तथा रासायनिक उपायों के साथ-साथ प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग किया जाता है। यह लेख जड़गाँठ सूत्रकृमि की समस्या, उसके प्रमुख लक्षणों तथा नियंत्रण उपायों का वर्णन करते हुए भारत की विविध कृषि जलवायु परिस्थितियों और कृषि प्रणालियों के अनुरूप तैयार की गई एकीकृत सूत्रकृमि प्रबंधन (आईएनएम) रणनीति का व्यापक अवलोकन प्रस्तुत करता है।

भारत में सब्जी की खेती कृषि का एक महत्वपूर्ण घटक है, जो पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने के साथ-साथ किसानों की आय में भी महत्वपूर्ण योगदान देती है। हालांकि, गहन खेती प्रणालियों, एकल फसल प्रणाली तथा संरक्षित वातावरण में खेती के बढ़ते प्रचलन के कारण कीट एवं रोगों की समस्याएँ भी बढ़ गई हैं। इनमें जड़गाँठ सूत्रकृमि (मेलोइडोगाइन प्रजातियाँ) का संक्रमण एक प्रमुख समस्या के रूप में उभरकर सामने आया है। अनुमान है कि सूत्रकृमि के कारण वार्षिक फसल उत्पादन में लगभग 10-15% तक हानि होती है, जो गंभीर रूप से संक्रमित खेतों में 30-60% तक बढ़ सकती है। इससे किसानों को भारी आर्थिक नुकसान का सामना करना पड़ता है।

[1]ओडिशा कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, भुबनेश्वर; [2]भाकृअनुप-भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु; [3]राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान, कटक

हानिकारक

जड़गाँठ सूत्रकृमि (मेलोइडोगाइन प्रजातियाँ) सब्जी फसलों के अंत:परजीवी सूत्रकृमि हैं, जो पौधों की जड़ों में प्रवेश कर वहाँ विशाल कोशिकाओं (जायंट सेल) का निर्माण करते हैं और इसी के माध्यम से अपना जीवन चक्र पूरा करते हैं। जड़गाँठ सूत्रकृमि विश्व स्तर पर खाद्य उत्पादन को प्रभावित करने वाले प्रमुख रोगजनकों में से एक माने जाते हैं। किसान आमतौर पर जड़ों पर बनने वाली गाँठों की अधिकता से इनके प्रकोप की पहचान कर लेते हैं, लेकिन किसी विशेष प्रजाति की सही पहचान करना कठिन होता है और इसके लिए प्राय: वर्गीकरण संबंधी विश्लेषण की आवश्यकता होती है, जो अधिकांश किसानों के लिए संभव नहीं होता। सब्जी फसलों में मुख्यत: मेलोइडोगाइन इन्कोग्निटा, मेलोइडोगाइन एरीनेरिया और मेलोइडोगाइन जावानिका ऊष्मास्नेही (गर्म जलवायु पसंद करने वाली) प्रजातियाँ हैं, जबकि मेलोइडोगाइन हाप्ला एक शीतस्नेही प्रजाति है। जड़गाँठ सूत्रकृमि सब्जी फसलों में गंभीर उपज हानि का कारण बनते हैं। संरक्षित खेती की परिस्थितियों में उगाई जाने वाली अत्यधिक संवेदनशील सब्जी फसलें, जैसे बैंगन, टमाटर और तरबूज में लगभग 30% तक उपज हानि दर्ज की गई है।

क्षति के लक्षण

जमीन के नीचे (जड़ों के लक्षण)

- **गाँठों का बनना:** यह सबसे प्रमुख और विशिष्ट लक्षण है। संक्रमित जड़ों पर विभिन्न आकार की सूजी हुई, ट्यूमर जैसी गाँठें दिखाई देती हैं।
- **जड़ों का सड़ना:** गंभीर संक्रमण की स्थिति में जड़ों का सड़ना शुरू हो जाता है, जिससे पौधे की वृद्धि प्रभावित होती है।

जमीन के ऊपर (पौधे के लक्षण)

- **वृद्धि में रुकावट:** खेत में पौधे ठहरे हुए तथा धीमी वृद्धि वाले दिखाई देते हैं।
- **पत्तियों का पीला पड़ना (क्लोरोसिस):** पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं, जो प्राय: पोषक तत्वों की कमी जैसे लक्षण दर्शाती हैं।

रोगजनक

सूत्रकृमि सूक्ष्म, मिट्टी में रहने वाले गोल कृमि होते हैं, जो पौधों की जड़ों को संक्रमित करते हैं और जड़ों पर विशेष प्रकार की गांठें बना देते हैं, जिन्हें जड़गाँठ कहा जाता है। ये विश्वभर में पौधों के सबसे विनाशकारी परजीवियों में से एक माने जाते हैं। विशेष रूप से सब्जी फसलों में ये जड़ों द्वारा पानी और पोषक तत्वों के अवशोषण को बाधित करते हैं, जिससे पौधों की वृद्धि एवं उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। सूत्रकृमियों की व्यापक उपस्थिति तथा उनका तीव्र जीवन चक्र इन्हें किसानों और बागवानों के लिए एक गंभीर चुनौती बना देता है। भारतीय परिस्थितियों में सब्जी फसलों को प्रभावित करने वाली प्रमुख प्रजातियाँ मेलोइडोगाइन इन्कोग्निटा, मेलोइडोगाइन एरेनेरिया तथा मेलोइडोगाइन जावानिका हैं।

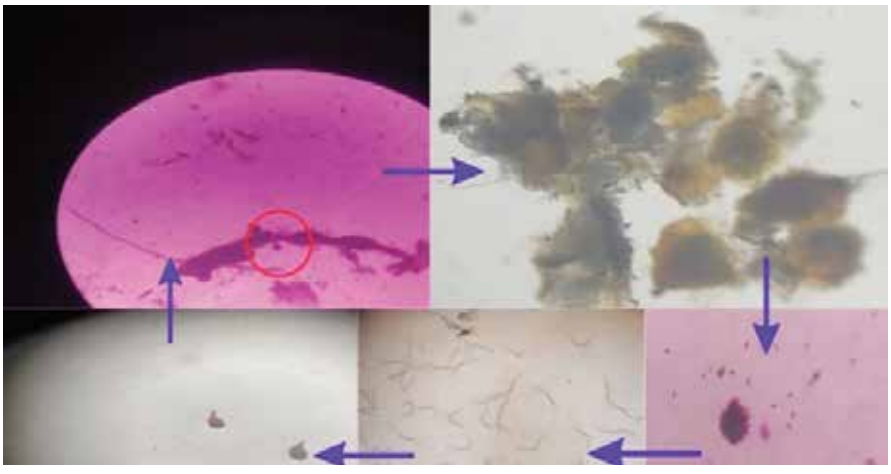

जड़गाँठ सूत्रकृमि का जीवन चक्र- संक्रमित जड़ में मादा सूत्रकृमि द्वारा अंडों के समूह का निर्माण, अंडों का विकास, द्वितीय शिशु अवस्था का निकलना तथा वयस्क मादा सूत्रकृमि का निर्माण।

- **मुरझाना:** गर्म दिनों में मिट्टी में पर्याप्त नमी होने के बावजूद पौधे आसानी से मुरझा जाते हैं।
- **उपज में कमी:** फलों के आकार, संख्या तथा गुणवत्ता में कमी आती है और कई बार पौधों की समय से पहले मृत्यु भी हो सकती है।

एकीकृत सूत्रकृमि प्रबंधन

जड़गाँठ सूत्रकृमि के प्रभावी नियंत्रण के लिए केवल एक ही विधि पर निर्भर रहना पर्याप्त नहीं होता। इसके प्रबंधन के लिए संवर्धित, जैविक, प्रतिरोधी किस्मों तथा रासायनिक उपायों के समन्वित उपयोग की आवश्यकता होती है।

संवर्धित एवं भौतिक नियंत्रण

- **फसलचक्र:** गैर पोषी या कम पोषी फसलों (जैसे गेंदा टैगेटेस प्रजाति, सरसों, तिल, मक्का एवं ज्वार) को संवेदनशील सब्जी फसलों के साथ फसल चक्र में शामिल करना चाहिए। गेंदा पौधे की जड़ों से अल्फा-टर्थीनिल नामक यौगिक निकलता है, जो सूत्रकृमियों के लिए विषैला होता है और उनके नियंत्रण में सहायक होता है।

स्वच्छता: कटाई के बाद संक्रमित पौधों की जड़ों को खेत से निकालकर नष्ट कर देना चाहिए, ताकि मृदा में मौजूद इनोकुलम (संक्रमण स्रोत) का स्तर कम किया जा सके।

सारणी: सूत्रकृमियों का जैविक नियंत्रण

जैविक एजेंट / उत्पाद	सब्जियाँ	नियंत्रित सूत्रकृमि
स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस 1.0% डब्ल्यू. पी. (पाउडर) - बीज, नर्सरी एवं मिट्टी उपचार के लिए	बैंगन, टमाटर, भिंडी, गाजर	जड़गाँठ सूत्रकृमि
ट्राइकोडर्मा हरजियानम 1.0-1.5% डब्ल्यू. पी. (पाउडर)	बैंगन, टमाटर, भिंडी, गाजर	मेलोइडोगाइन इन्कोग्निटा
ट्राइकोडर्मा विरिडी 1.5% डब्ल्यू.पी. (पाउडर)	बैंगन, टमाटर, भिंडी, गाजर	मेलोइडोगाइन इन्कोग्निटा
वर्टिसिलियम क्लैमाइडोस्पोरियम 1.0% डब्ल्यू.पी. (पाउडर) - अंडा परजीवी कवक	बैंगन, टमाटर, भिंडी, गाजर	मेलोइडोगाइन इन्कोग्निटा
पेसिलोमाइसिस लिलासिनस 1.15-1.50%	बैंगन, टमाटर	जड़गाँठ सूत्रकृमि

सारणी: सूत्रकृमियों का रासायनिक नियंत्रण

रासायनिक उत्पाद	सब्जियाँ	नियंत्रित सूत्रकृमि
कार्बोफ्यूरॉन 3% सीजी (दानेदार)	बैंगन	जड़गाँठ सूत्रकृमि, वृक्काकार सूत्रकृमि
डैजोमेट (मृदा धूम्रक)	टमाटर (नर्सरी)	जड़गाँठ सूत्रकृमि
फ्लुएन्सुल्फोन 2% जीआर (दानेदार)	टमाटर	मेलोइडोगाइन प्रजाति
फ्लुएन्सुल्फोन 2% जीआर (दानेदार)	खीरा	मेलोइडोगाइन प्रजाति
फ्लुएन्सुल्फोन 2% जीआर (दानेदार)	भिंडी	मेलोइडोगाइन प्रजाति
फ्लूओपाइरम 34.48% एससी	टमाटर	जड़गाँठ सूत्रकृमि
फ्लूओपाइरम 34.48% एससी	खीरा	जड़गाँठ सूत्रकृमि

मृदा सौरीकरण

यह गर्म क्षेत्रों में सूत्रकृमि नियंत्रण की एक अत्यंत प्रभावी विधि है। इसमें सबसे गर्म महीनों (अप्रैल-जून) के दौरान नम मिट्टी को 4-6 सप्ताह तक पारदर्शी पॉलीथीन शीट (100-200 गेज) से ढक दिया जाता है। इस प्रक्रिया में सौर ऊर्जा के प्रभाव से मिट्टी का तापमान बढ़ जाता है, जिससे सूत्रकृमि, रोगजनक सूक्ष्मजीव तथा अन्य हानिकारक कीट नष्ट हो जाते हैं।

पारदर्शी पॉलीथीन शीट द्वारा मृदा सौरीकरण

सारणी: जड़गाँठ सूत्रकृमि से प्रतिरोधी किस्में

सब्जियाँ	प्रतिरोधी / सहिष्णु किस्में
टमाटर	एसएल-120, हिसार ललित
बैंगन	ब्लैक ब्यूटी
मिर्च	पूसा ज्वाला, मोहिनी, रेड वंडर
लोबिया	बरसाती म्यूटेंट, आईएचआर-29-5
मटर	बी-58, सी-50
आलू	कुफरी देवा, कुफरी स्वर्णा
भिंडी	हरीचिकनी, वैशाली बाधेर
कद्दू	दस्ता, जयपुरी
तरबूज	शाहजाहपुरी
तुरई	पानीपत स्पेशल, मेरठ स्पेशल

टमाटर, बैंगन, सरसों, मक्का, गेंदा और लहसुन का फसलचक्र

जैविक सुधार: कम्पोस्ट, नीम की खली, सरसों की खली, कुक्कुट अपशिष्ट खाद तथा हरी खाद (जैसे ढैंचा) जैसे जैविक पदार्थों का उपयोग मृदा के स्वास्थ्य में सुधार करता है और लाभकारी सूक्ष्मजीवों की वृद्धि को बढ़ावा देता है। इन पदार्थों के अपघटन के दौरान अमोनिया जैसे यौगिक निकलते हैं, जो सूत्रकृमियों के लिए विषैले होते हैं और उनके नियंत्रण में सहायक होते हैं।

परती भूमि और जलप्लावन: जहाँ संभव हो, भूमि को कुछ समय के लिए परती छोड़ना या खेत में जलप्लावन (जलभराव) करना सूत्रकृमियों की आबादी को कम करने में सहायक होता है। इससे मिट्टी की प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण सूत्रकृमियों का जीवित रहना कठिन हो जाता है।

अनुप्रयोग: इन जैविक कारकों पर आधारित उत्पाद (जैसे- पर्पुरियोसिलियम लिलासिनस के फॉर्मूलेशन) बाजार में उपलब्ध हैं। इन्हें लेबल पर दिए गए निर्देशों के अनुसार बुआई या रोपण के समय मिट्टी में मिलाकर प्रयोग करना चाहिए।

रासायनिक नियंत्रण: उच्च लागत, पर्यावरणीय चिंताओं तथा अवशेष संबंधी समस्याओं (विशेषकर सब्जियों में) के कारण रासायनिक नियंत्रण (सूत्रकृमिनाशक / नेमेटीसाइड) को अंतिम उपाय के रूप में ही अपनाना चाहिए।

स्वस्थ जड़ प्रणाली तंत्र

प्रतिरोधी/सहिष्णु किस्मों का उपयोग

यह जड़गाँठ सूत्रकृमि के प्रबंधन की सबसे किफायती और प्रभावी रणनीतियों में से एक है। पादप प्रजनकों द्वारा कुछ ऐसी किस्में विकसित की गई हैं, जिनमें विशेष रूप से मेलोइडोगाइन इन्कोग्निटा जैसे जड़गाँठ सूत्रकृमि से प्रतिरोध या सहनशीलता पाई जाती है। इनमें विभिन्न संकर टमाटर (एनएस-501 एवं नवीन-2000 प्लस), बैंगन और लोबिया की कुछ किस्में मेलोइडोगाइन इन्कोग्निटा से प्रतिरोधक क्षमता प्रदर्शित करती हैं। इसके साथ ही किसानों को बीज हमेशा विश्वसनीय एवं प्रमाणित संस्थानों से प्राप्त करना चाहिए तथा अपने क्षेत्र की कृषि-जलवायु परिस्थितियों के अनुसार उपयुक्त किस्मों का चयन करना चाहिए।

सब्जियों में जड़गाँठ सूत्रकृमि (रूट-नॉट नेमाटोड) के नियंत्रण के लिए एक समन्वित एवं एकीकृत दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है। मृदा सौरीकरण और फसल चक्र जैसी कृषि पद्धतियों को मृदा में कार्बनिक पदार्थों की वृद्धि, जैविक एजेंटों के उपयोग तथा प्रतिरोधी किस्मों के चयन के साथ समन्वित करके किसान इस छिपे हुए शत्रु (सूत्रकृमि) का प्रभावी प्रबंधन कर सकते हैं। रासायनिक उपायों पर निर्भर रहने के बजाय एकीकृत सूत्रकृमि प्रबंधन की सक्रिय रणनीति अपनाना वर्तमान समय की आवश्यकता है। इससे न केवल जड़गाँठ सूत्रकृमि की समस्या को नियंत्रित किया जा सकता है, बल्कि भारत के महत्वपूर्ण सब्जी क्षेत्र की भी सुनिश्चित की जा सकती है।

सब्जियों की संरक्षित खेती हेतु पॉलीहाउस तकनीक

पुष्पेंद्र प्रताप सिंह, शुभम यादव और **राजेन्द्र प्रसाद मिश्रा**

निरंतर बढ़ती जनसंख्या, बड़े पैमाने पर शहरीकरण तथा तीव्र औद्योगिकीकरण के कारण हमारे देश में बड़ी आबादी के लिए पौष्टिक आहार उपलब्धता एक बड़ी चुनौती बन गया है। एक अनुमान के अनुसार वर्ष 2047 तक उपभोक्ताओं की मांग को पूरा करने के लिए लगभग 365 मिलियन टन सब्जियों की आवश्यकता होगी, जबकि वर्तमान में सब्जियों का उत्पादन लगभग 214.56 मिलियन टन है। मनुष्य के संतुलित आहार में पोषक तत्वों से भरपूर सब्जियों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। ऐसी स्थिति में वर्षभर सब्जियों की उपलब्ध ता सुनिश्चित करने के लिए संरक्षित खेती एक प्रभावी समाधान के रूप में उभर रही है। संरक्षित खेती, जिसे पॉलीहाउस खेती भी कहा जाता है, एक ऐसी कृषि पद्धति है जिसमें फसलों को नियंत्रित वातावरण में उगाया जाता है। इस पद्धति में तापमान, आर्द्रता, प्रकाश आदि सभी आवश्यक कारकों को फसल की आवश्यकता के अनुसार नियंत्रित किया जाता है। यह विधि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी स्थिर एवं अधिक उत्पादन प्रदान करने में सक्षम है।

संरक्षित खेती में कीटरोधी नेट हाउस, पॉलीहाउस, आधुनिक तकनीकों से युक्त पॉलीहाउस, प्लास्टिक लो-टनल एवं हाई-टनल, प्लास्टिक मल्चिंग तथा ड्रिप सिंचाई जैसी तकनीकों का उपयोग किया जाता है। इसके अंतर्गत उच्च मूल्य वाली सब्जियों जैसे टमाटर, चेरी टमाटर, रंगीन शिमला मिर्च, पार्थेनोकार्पिक खीरा, बैंगन, घरकिन्स, जुकीनी, तरबूज एवं खरबूजे की व्यापक रूप से खेती की जाती है।

भाकृअनुप-भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम, मेरठ

संरक्षित खेती के अंतर्गत प्राप्त उत्पादकता पारंपरिक खुले खेतों की तुलना में तीन से दस गुना अधिक हो सकती है, जो फसल के प्रकार पर निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त यह तकनीक जल संरक्षण, उत्पादन वृद्धि, पर्यावरण संरक्षण, वर्षभर उत्पादन तथा स्थानीय स्तर पर रोजगार सृजन जैसे अनेक लाभ प्रदान करती है।

बाजार अनुसार खेती

अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए ऑफ-सीजन खेती को प्राथमिकता देनी चाहिए। इसके लिए फसल की रोपाई का समय इस प्रकार निर्धारित करना आवश्यक है कि फसल की जलवायु आवश्यकताओं और बाजार की मांग के बीच उचित संतुलन बना रहे।

पॉलीहाउस की संरचना

प्राकृतिक रूप से हवादार पॉलीहाउस का आकार सामान्यत: 50 मीटर × 50 मीटर से अधिक नहीं होना चाहिए। यदि इसका आकार अधिक बड़ा होगा, तो वेंटिलेशन की कमी के कारण अंदर का तापमान अत्यधिक बढ़ सकता है। इसी प्रकार, वाष्पीकरण शीतलन प्रणाली कूलिंग सिस्टम वाले पॉलीहाउस की

प्लास्टिक लो टनल

प्लास्टिक लो टनल ग्रीनहाउस का एक लघु रूप है, जिसकी ऊँचाई सामान्यत: 0.75 से 1.0 मीटर होती है। इसका उपयोग पौधों को वर्षा, तेज हवा, कम तापमान, पाला तथा कीटों से संरक्षण प्रदान करने के लिए किया जाता है। लो टनल संरचनाएँ सरल एवं कम लागत वाली होती हैं, जिन्हें बनाने के लिए विशेष तकनीकी कौशल की आवश्यकता नहीं होती। इसके निर्माण में सामान्यत: 100 माइक्रॉन मोटाई की पारदर्शी प्लास्टिक फिल्म का उपयोग किया जाता है। यह तकनीक न केवल फसलों को प्रतिकूल मौसम से बचाती है, बल्कि शुरुआती वृद्धि को प्रोत्साहित कर उत्पादन में भी वृद्धि करती है। 100 माइक्रॉन मोटाई की फिल्म की लागत लगभग 10-20 प्रति वर्ग मीटर होती है, जिससे यह छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए एक किफायती विकल्प बन जाती है।

लंबाई 60 मीटर से अधिक नहीं रखनी चाहिए।

पॉलीहाउस की ऊँचाई

पॉलीहाउस की ऊँचाई उसके आकार एवं संरचना पर निर्भर करती है, लेकिन सामान्यत: निम्न मानक उपयुक्त माने जाते हैं:

- छोटे प्राकृतिक रूप से हवादार पॉलीहाउस (लगभग 250 वर्ग मीटर तक) की जल निकास नाली की ऊँचाई 3.5 से 4.5 मीटर होनी चाहिए।
- बड़े पॉलीहाउस में किनारे की ऊँचाई 5.5 से 6.5 मीटर तक रखी जानी चाहिए।
- पॉलीहाउस की केंद्र (रिज) ऊँचाई 6.0 से 6.5 मीटर आदर्श मानी जाती है।

मध्यम लागत वाला अर्धगोलाकार पॉलीहाउस

वेंटिलेशन एवं पॉलीहाउस के बीच की दूरी

- साइड वेंटिलेशन की चौड़ाई लगभग 2 मीटर होनी चाहिए।
- टॉप (रिज) वेंटिलेशन की चौड़ाई लगभग 1 मीटर होनी चाहिए।
- दो प्राकृतिक रूप से हवादार पॉलीहाउस के बीच 10 से 15 मीटर की दूरी रखनी चाहिए, ताकि एक पॉलीहाउस से निकलने वाली गर्म हवा दूसरे में प्रवेश न करे।

पॉलीहाउस के प्रकार

कम लागत वाले पॉलीहाउस: कम लागत वाले पॉलीहाउस का निर्माण 800 गेज (200 माइक्रोन) मोटाई की पारदर्शी पॉलीथीन शीट से किया जाता है। इसे बांस, जूट की रस्सी और कीलों के सहारे खड़ा किया जाता है। यह संरचना मुख्यत: फसल को अधिक वर्षा एवं प्रतिकूल मौसम से बचाने के लिए उपयोगी होती है। ऐसे पॉलीहाउस के अंदर का तापमान बाहरी तापमान की तुलना में लगभग 6-10° से. अधिक रहता है।

प्लास्टिक लो टनल

मध्यम लागत वाला पॉलीहाउस: यह पॉलीहाउस अपेक्षाकृत मजबूत एवं टिकाऊ होता है। यह सामान्यत: क्वॉनसेट (अर्धगोलाकार) आकार का होता है और इसका ढांचा 15 मि.मी. व्यास के जीआई पाइप से तैयार किया जाता है। इस संरचना को 200 माइक्रोन मोटाई की एकल परत वाली यूवी-स्थिरित पॉलीथीन शीट से ढका जाता है।

इसे प्राकृतिक रूप से हवादार बनाने के लिए किनारों एवं छत पर खुलने योग्य खिड़कियाँ (वेंट) लगाई जाती हैं। आवश्यकता अनुसार वेंटिलेशन के लिए एग्जॉस्ट फैन का भी उपयोग किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, अंदर की आर्द्रता एवं तापमान को नियंत्रित रखने के लिए फैन-पैड प्रणाली का भी प्रयोग किया जाता है।

उच्च लागत वाला पॉलीहाउस

उच्च लागत वाला पॉलीहाउस मजबूत लोहे या एल्युमीनियम के फ्रेम से निर्मित होता है, जिसकी छत सामान्यत: गुंबदाकार या शंक्वाकार होती है। इस प्रकार के ग्रीनहाउस में तापमान, आर्द्रता तथा प्रकाश जैसे पर्यावरणीय कारकों को फसल की आवश्यकता के अनुसार स्वचालित प्रणालियों द्वारा नियंत्रित किया जाता है। इसकी फर्श तथा आंशिक दीवारें कंक्रीट की बनी होती हैं, जिससे संरचना की मजबूती एवं दीर्घकालिक स्थायित्व बढ़ जाता है। यह ग्रीनहाउस अत्यधिक टिकाऊ एवं उन्नत होता है, किन्तु इसकी स्थापना लागत सामान्य पॉलीहाउस की तुलना में लगभग 5-6 गुना अधिक होती है।

नेट हाउस

नेट हाउस का उपयोग सब्जियों एवं पुष्प फसलों की संरक्षित खेती के लिए किया जाता है। इन संरचनाओं की ऊँचाई सामान्यत: लगभग 3 मीटर होती है तथा इनका शीर्ष समतल (फ्लैट) होता है। इन्हें उपयुक्त

छायांकन क्षमता (35-90%) एवं फसल की आवश्यकता के अनुसार विभिन्न रंगों के शेड नेट से ढका जाता है।

उत्तरी भारत में कम एवं मध्यम लागत वाले ग्रीनहाउस/नेट हाउस बरसात के मौसम (जुलाई-अक्टूबर) के दौरान उच्च मूल्य वाली सब्जियों एवं फूलों के उत्पादन के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होते हैं। इस अवधि में खुले खेतों में टमाटर, चेरी टमाटर, रंगीन शिमला मिर्च, खीरा एवं पोल-टाइप फ्रेंच बीन्स जैसी फसलों की खेती करना कठिन होता है। परिणामस्वरूप इनकी बाजार में कमी रहती है और किसानों को अधिक मूल्य प्राप्त होता है, जिससे लाभप्रदता बढ़ती है।

हालांकि, भारी वर्षा के कारण कीट एवं रोगों का प्रकोप बढ़ जाता है, इसलिए संरक्षित संरचनाओं में इनका समुचित प्रबंधन अत्यंत आवश्यक होता है।

नेट हाउस के प्रकार

कीट रोधी नेट हाउस

- ये नेट हाउस 40-50 मेश के यूवी-स्थिरीकृत जाल से ढके होते हैं।
- इनका प्रमुख उद्देश्य कीटों के प्रवेश को रोककर फसल को सुरक्षित रखना होता है।
- विशेष रूप से नर्सरी एवं संवेदनशील सब्जी फसलों के लिए अत्यंत उपयोगी हैं।

शंक्वाकार पॉलीहाउस

छायादार नेट हाउस

- यह नेट हाउस गर्मियों (अप्रैल-जून) के दौरान सब्जियों की खेती के लिए अत्यंत उपयुक्त होता है।
- इसमें प्रयुक्त जाल की छायांकन क्षमता (35-90%) तथा रंग का चयन फसल की आवश्यकता के अनुसार किया जाता है।
- यह तापमान को नियंत्रित करने और पौधों को तेज धूप से बचाने में सहायक होता है।

उदाहरण

- धनिया, पालक, पुदीना के लिए 40% 60% छायांकन उपयुक्त रहती है।
- मिर्च/शिमला मिर्च के लिए 30-40% छायांकन बेहतर माना जाता है।

इस प्रकार, विभिन्न फसलों की आवश्यकताओं के अनुसार उपयुक्त नेट हाउस का चयन करने से उत्पादन एवं गुणवत्ता दोनों में सुधार किया जा सकता है।

वॉक इन टनल

वॉक-इन टनल एक अस्थायी संरक्षित खेती की संरचना है, जिसे प्री-गैल्वेनाइज्ड पाइप या बांस के खंभों से बनाया जाता है। इस संरचना में जंगरोधी लगभग आधा इंच व्यास की पाइप को अर्धवृत्ताकार आकार में मोड़कर भूमि में स्थापित किया जाता है, जो पूरी संरचना को सहारा प्रदान करती है। इसके ऊपर पारदर्शी यूवी-स्थिरित (150-200 माइक्रॉन) प्लास्टिक शीट लगाई जाती है। यह शीट सूर्य के प्रकाश को संरचना के अंदर प्रवेश करने देती है, जिसे पौधे अवशोषित करते हैं, परिणामस्वरूप अंदर का तापमान बढ़ जाता है। इस प्रकार बढ़ा हुआ तापमान विशेष रूप से ठंडे जलवायु में सब्जियों की खेती के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करता है, जिससे फसल की वृद्धि एवं उत्पादन में सुधार होता है।

वॉक-इन टनल

निवेदन

लेखक बंधु *फल फूल* पत्रिका के लिए अपने लेख और संबंधित फोटो, कवरिंग लैटर के साथ सिर्फ निम्न पोर्टल पर ही अपने मोबाइल नम्बर के साथ भेजें। ध्यान रखें कि फोटो मौलिक होने के साथ जेपीजे फॉर्मेट में और उच्च रेज्योल्यूशन की हों। लेख में अधिकतम 1200 शब्दों की संख्या रखने का प्रयास करें। इसके अतिरिक्त सुझाव और प्रतिक्रियाएं भी भेज सकते हैं। लेख भेजने के लिए कृपया कृतिदेव 010 टाइप फेस का प्रयोग करें।

हमारा पोर्टल है :
epatrika.icar.org.in

–संपादक

मई-जून माह के बागवानी कार्य

हरे कृष्ण[1], अरविंद कुमार सिंह[2], शुभम कुमार तिवारी[1], अनूप प्रताप सिंह[1] और शशि शेखर[1]

मई-जून (ज्येष्ठ-आषाढ़) का समय भारत में फलोत्पादन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि यह ग्रीष्म ऋतु के चरम और मानसून के आगमन के बीच का संक्रमण काल है। इस अवधि में विशेषकर उत्तर एवं मध्य भारत में तापमान 40° से. से अधिक तक पहुँच जाता है, जिससे पौधों में वाष्पोत्सर्जन बढ़ जाता है और नमी की कमी, फल झड़ना, फल फटना तथा आतपदाह (सनबर्न) जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। दूसरी ओर, यही समय आम, लीची, पपीता, चीकू एवं अंगूर जैसे फलों के पकने और तुड़ाई का भी होता है, इसलिए उचित प्रबंधन, सिंचाई तथा विपणन व्यवस्था अत्यंत आवश्यक हो जाती है। कटाई एवं कटाई-उपरांत प्रबंधन भी इस अवधि में अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। फलों की तुड़ाई उचित परिपक्वता अवस्था में करनी चाहिए तथा उन्हें यांत्रिक क्षति से बचाना चाहिए। पूर्व-शीतन (प्री-कूलिंग), छंटाई, श्रेणीकरण एवं उपयुक्त पैकिंग द्वारा फलों की गुणवत्ता एवं भंडारण क्षमता बढ़ाई जा सकती है। साथ ही मिट्टी का सौरीकरण कर कीटों, रोगजनकों एवं खरपतवारों के बीजों को नष्ट किया जा सकता है। इस प्रकार मई-जून का समय फल बागानों के लिए संतुलन का काल होता है, जिसमें अत्यधिक गर्मी की चुनौतियों तथा मानसून से मिलने वाले अवसरों के बीच समुचित प्रबंधन अपनाकर फलोत्पादन की सफलता सुनिश्चित की जा सकती है।

मई-जून अवधि में आम की फसल विशेष रूप से उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र एवं आंध्र प्रदेश में तैयार होती है, जबकि उत्तर-पश्चिमी शुष्क क्षेत्रों में अनार की मृग बहार का विशेष महत्व रहता है।

बेर एवं खजूर में छंटाई तथा फल विरलीकरण किया जाता है, जबकि सेब, नाशपाती, आड़ू एवं आलूबुखारा जैसे शीतोष्ण फलों में फल विकास की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है। अतः इस समय बाग प्रबंधन का मुख्य आधार नमी संरक्षण तथा ताप से बचाव होता है। इसके लिए हल्की एवं बार-बार सिंचाई, पलवार (मल्चिंग) तथा तनों पर चूना एवं कॉपर सल्फेट का लेप (सफेदी) करना उपयोगी होता है, जिससे सनबर्न से सुरक्षा मिलती है। गर्म हवाओं (लू) से बचाव हेतु छाया प्रबंधन एवं वायुरोधक उपाय अपनाना भी आवश्यक है। फल फटने की समस्या के नियंत्रण हेतु मिट्टी में नमी का संतुलन बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है तथा आवश्यकता पड़ने पर वृद्धि नियामकों का प्रयोग भी किया जा सकता है। साथ ही सूखी एवं रोगग्रस्त शाखाओं की छंटाई भी इस समय करनी चाहिए।

जून माह में मानसून के आगमन के साथ वातावरण में आर्द्रता बढ़ने लगती है, जिससे कीट एवं रोगों का प्रकोप भी बढ़ जाता है। अतः आम, अंगूर एवं अन्य फलों में फफूंदजनित रोगों के नियंत्रण हेतु समय

[1]भाकृअनुप - भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी-221 305 [2]केंद्रीय बागवानी परीक्षण केंद्र, (केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान), वेजलपुर (गोधरा), गुजरात- 389 340;

पर उपयुक्त प्रबंधन आवश्यक है। पक्षियों से फलों की सुरक्षा के लिए जाल का उपयोग भी लाभकारी रहता है। इस अवधि में नए बाग लगाने की तैयारी के अंतर्गत गड्ढों की खुदाई कर उनमें खाद एवं मिट्टी भर दी जाती है, ताकि वर्षा के साथ पौधरोपण सुचारु रूप से किया जा सके। नर्सरी पौधों को तेज गर्मी से बचाने के लिए छप्पर या शेड की व्यवस्था तथा नियमित सिंचाई आवश्यक होती है।

इसी अवधि में 21 जून को ग्रीष्म संक्रांति के कारण दिन सबसे लंबे होते हैं। तटीय क्षेत्रों में "मैंगो शावर" तथा पूर्वी भारत में "काल बैसाखी" जैसी वर्षाएँ आम एवं लीची के लिए लाभकारी सिद्ध होती हैं, जबकि उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों में लू से बचाव हेतु विशेष उपाय आवश्यक होते हैं। जून के अंत तक मानसून के आगमन से मिट्टी में नमी बढ़ती है, जो पौधों की जड़ों के विकास के लिए अत्यंत अनुकूल रहती है।

आम

मानसून के आगमन से पूर्व मई माह आम के बाग की स्थापना एवं प्रबंधन की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। इस समय नए बाग लगाने के लिए सर्वप्रथम उचित दूरी पर रेखांकन (निशान लगाना) कर गड्ढों की खुदाई का कार्य पूर्ण कर लेना चाहिए, ताकि वर्षा के साथ पौधरोपण सुगमता से किया जा सके।

नर्सरी प्रबंधन

नर्सरी प्रबंधन के अंतर्गत बीजू पौधों की आवश्यकता अनुसार सिंचाई तथा नियमित निराई-गुड़ाई करनी चाहिए। साथ ही पकते हुए फलों को पक्षियों से सुरक्षित रखना आवश्यक है। फलों की आंतरिक सड़न की रोकथाम हेतु बोरेक्स (4 कि.ग्रा. प्रति 100 लीटर पानी) का छिड़काव किया जा सकता है। फल झड़ने की समस्या को नियंत्रित करने के लिए 2,4-डी (10 ग्राम प्रति 500 लीटर पानी) का छिड़काव उपयोगी रहता है। फल मक्खी के प्रबंधन हेतु मिथाइल यूजीनॉल पाश (लगभग 10 प्रति एकड़) का प्रयोग प्रभावी होता है। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक शत्रु, जैसे ओपियस कोमपेनसेट्स एवं स्पालांजिया फिलीपाइन्स, भी जैविक नियंत्रण में सहायक होते हैं। कैंकर रोग की रोकथाम के लिए स्ट्रेप्टोमाइसिन (200 पीपीएम) का छिड़काव लाभकारी रहता है। फलों की समुचित वृद्धि एवं स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए 7-10 दिनों के अंतराल पर आवश्यकता अनुसार छिड़काव करना उपयोगी होता है।

डाली पर लदे आम

पौधों के बीच दूरी का निर्धारण क्षेत्र की जलवायु एवं मृदा की उर्वरता के आधार पर किया जाना चाहिए। शुष्क क्षेत्रों, जहाँ वानस्पतिक वृद्धि अपेक्षाकृत सीमित रहती है, वहाँ 10 × 10 मीटर की दूरी उपयुक्त रहती है, जबकि अधिक वर्षा एवं उपजाऊ मृदा वाले क्षेत्रों में 12 × 12 मीटर की दूरी रखना लाभकारी होता है।

संकर एवं बौनी किस्मों, जैसे आम्रपाली, को सघन रोपण प्रणाली के अंतर्गत 5 × 5 मीटर की दूरी पर सफलतापूर्वक लगाया जा सकता है।

जून माह में गिरे हुए फलों को एकत्र कर उनका उचित निपटान अथवा स्थानीय बाजार में भेजने की व्यवस्था करनी चाहिए तथा बाग की स्वच्छता बनाए रखना आवश्यक है। अगेती किस्मों के पकने पर समय पर तुड़ाई एवं विपणन की व्यवस्था सुनिश्चित करनी चाहिए।

फलों की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए तुड़ाई के तुरंत बाद डीसैपिंग (डंठल से निकलने वाले स्राव को हटाना) आवश्यक होता है। तुड़ाई प्रातः अथवा सायंकाल के समय करनी चाहिए तथा प्रत्येक फल को लगभग 10 मि.मी. डंठल सहित तोड़ा जाना चाहिए।

बौनी किस्मों की तुड़ाई के लिए सिकेटियर तथा ऊँचे वृक्षों के लिए मैंगो हार्वेस्टर का उपयोग उपयुक्त रहता है। तुड़ाई के दौरान विभिन्न किस्मों के फलों को मिश्रित नहीं करना चाहिए तथा उन्हें किस्मवार अलग रखते हुए श्रेणीकरण करना चाहिए, जिससे बाजार में बेहतर मूल्य प्राप्त हो सके। वजन के आधार पर फलों को चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। 'ए' (100-200 ग्राम), 'बी' (201-350 ग्राम), 'सी' (351-550 ग्राम) तथा 'डी' (551-800 ग्राम)।

तुड़ाई के बाद रोगों की रोकथाम एवं समान रूप से पकाने के लिए कार्बेण्डाजिम (0.5 ग्राम प्रति लीटर) तथा इथरेल (700 पीपीएम) के घोल को लगभग 52° से. गुनगुने पानी में तैयार कर फलों को लगभग 5 मिनट तक उपचारित करना चाहिए। विपणन एवं निर्यात हेतु पैकेजिंग के दौरान प्रत्येक फल को स्वच्छ, कोमल एवं जालीदार पॉलीस्टाइरीन में लपेटकर पैक करना चाहिए। बंगनपल्ली आम के लिए 390 × 260 × 115 मि.मी. आकार के पैकेज बॉक्स तथा दशहरी आम के लिए 5 प्रतिशत वातायनयुक्त नालीदार फाइबर बोर्ड के 320 × 230 × 90 मि.मी. आकार के बॉक्स का उपयोग उपयुक्त रहता है।

केला

मई माह में केले की फसल की समुचित वृद्धि के लिए नियमित सिंचाई अत्यंत आवश्यक होती है, अतः प्रति सप्ताह सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। पौधों पर अनावश्यक पत्तियों को हटाकर फलों के गुच्छों को तेज धूप से बचाने हेतु उन्हें पत्तियों से आच्छादित करना लाभकारी रहता है।

नए बागों की स्थापना के लिए रेखांकन के पश्चात 45 × 45 × 45 सें.मी. आकार के गड्ढे खोदकर तैयार रखें तथा जून के अंतिम सप्ताह में इन्हें समान मात्रा में गोबर की खाद, उर्वरक एवं मिट्टी के मिश्रण से भरें। प्रति गड्ढा नीम खली 250 ग्राम तथा स्यूडोमोनास

25 ग्राम का प्रयोग करने से मृदा स्वास्थ्य एवं पौध स्थापना में सुधार होता है। गड्ढे भरने के तुरंत बाद हल्की सिंचाई करना आवश्यक है, जिससे मिट्टी अच्छी तरह बैठ जाए।

पुराने बागों में यदि पत्तियों पर धब्बेदार रोग दिखाई दें तो संक्रमित पत्तियों को काटकर नष्ट कर देना चाहिए अथवा उन्हें मिट्टी में गहरा दबा देना चाहिए। रोग नियंत्रण हेतु ब्लाइटॉक्स 50 का 0.3 प्रतिशत घोल (300 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी) का छिड़काव प्रभावी रहता है।

खेत में नमी बनाए रखने के लिए पौधों के चारों ओर थालों में धान का पुआल, गन्ने की पत्तियाँ या केले की सूखी पत्तियों की 8-10 सें.मी. मोटी परत बिछानी चाहिए। इससे नमी संरक्षण, खरपतवार नियंत्रण तथा सिंचाई की आवश्यकता में कमी आती है। साथ ही जैविक पलवार के अपघटन से मिट्टी की उर्वरता एवं उपज में भी वृद्धि होती है।

केले के पौधों को तेज हवाओं से बचाने के लिए खेत के उत्तर-पश्चिम दिशा में वायुरोधक पौधों की पंक्तियाँ लगाना अत्यंत आवश्यक है, जिससे पौधों को यांत्रिक क्षति से बचाया जा सके और उनकी वृद्धि सुचारु बनी रहे।

अमरूद

मई का समय अमरूद में फलों के विकास की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि इस अवधि में वातावरण प्राय: शुष्क हो जाता है और मृदा में नमी की कमी होने लगती है। ऐसी स्थिति में यदि समय पर सिंचाई न की जाए तो फलों की वृद्धि प्रभावित होकर वे आकार में छोटे रह सकते हैं। अत: 8-10 दिनों के अंतराल पर नियमित सिंचाई करना आवश्यक है, जिससे मृदा में नमी संतुलित बनी रहे और फलों का समुचित विकास हो सके।

मई माह में बागों में फल मक्खी एवं अन्य कीटों का प्रकोप बढ़ सकता है, जिसके नियंत्रण हेतु उपयुक्त कीटनाशकों का प्रयोग करना चाहिए। वैकल्पिक रूप से 3 प्रतिशत नीम तेल का छिड़काव भी प्रभावी रहता है। छिड़काव प्रात:काल अथवा सायंकाल के समय करना चाहिए तथा लगभग 21 दिनों के अंतराल पर कम से कम चार बार दोहराना चाहिए। इसके अतिरिक्त फेरोमोन ट्रैप (मिथाइल यूजेनॉल) का उपयोग, छोटी अवस्था में फलों की बैगिंग तथा संक्रमित फलों को नष्ट कर बगीचे की स्वच्छता बनाए रखना आवश्यक है।

मृदा में रहने वाली फल मक्खी की विभिन्न अवस्थाओं के नियंत्रण हेतु पेड़ की छत्रछाया के नीचे मिट्टी की हल्की जुताई कर मेटाराइजियम एनिसोप्लिया का 5 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करना लाभकारी पाया गया है।

जून माह नए अमरूद के बागों की स्थापना के लिए उपयुक्त समय होता है। इसके लिए मई माह में खेत की 2 बार ग्रीष्मकालीन जुताई कर भूमि को भुरभुरी एवं समतल बना लेना चाहिए। इसके पश्चात रेखांकन एवं खूंटी अंकन कर कतारों एवं पौधों के बीच दूरी 3-6 मीटर (सामान्य अथवा सघन रोपण प्रणाली के अनुसार) निर्धारित करनी चाहिए। गड्ढों का आकार 60 × 60 × 60 सें.मी. रखा जाना चाहिए। गड्ढा खोदते समय ऊपरी उपजाऊ मिट्टी को अलग तथा नीचे की मिट्टी को अलग रखना चाहिए तथा गड्ढों को कम से कम दो सप्ताह तक धूप में खुला छोड़ देना चाहिए, जिससे मृदा जनित कीट एवं रोगजनक नष्ट हो सकें।

जून माह में प्रत्येक गड्ढे को लगभग 10 किलोग्राम सड़ी हुई गोबर की खाद, 1 किलोग्राम नीम खली, 50 ग्राम क्लोरोपाइरीफॉस पाउडर तथा ऊपरी मिट्टी के साथ अच्छी तरह मिलाकर भरना चाहिए। गड्ढों को भूमि सतह से लगभग 15 सें.मी. ऊपर तक भरना चाहिए, ताकि मिट्टी बैठने के बाद रोपण के समय सतह समतल बनी रहे। मानसून के प्रारंभ के साथ नए बागों में अंतरवर्ती फसलों की खेती भी की जा सकती है, जिससे अतिरिक्त आय प्राप्त होती है।

इस समय पौधों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी, विशेषकर जिंक की कमी, सामान्यत: देखी जाती है, जिसके कारण पत्तियाँ छोटी एवं पीली पड़ जाती हैं। इसके नियंत्रण हेतु 0.5 किलोग्राम जिंक सल्फेट तथा 0.5 किलोग्राम बुझे हुए चूने को 100 लीटर पानी में घोलकर 15 दिनों के अंतराल पर 2-3 बार छिड़काव करना चाहिए।

अंगूर

नई बेलों में संतुलित वृद्धि एवं फल विकास के लिए 10-15 दिनों के अंतराल पर नियमित सिंचाई करना आवश्यक है, जिससे मृदा में पर्याप्त नमी बनी रहे। मई माह के अंत तक परलेट एवं ब्यूटी सीडलैस जैसी शीघ्र पकने वाली किस्मों के तैयार गुच्छों की तुड़ाई कर उन्हें समय पर बाजार भेजने की व्यवस्था करनी चाहिए। जैसे ही फल पकने की अवस्था में पहुँचें, सिंचाई बंद कर देनी चाहिए, क्योंकि इस अवस्था में अधिक नमी से फलों में ठोस घुलनशील पदार्थ की मात्रा कम हो जाती है तथा फल फटने की समस्या बढ़ जाती है, जिससे उनकी बाजार गुणवत्ता प्रभावित होती है।

रोग प्रबंधन के अंतर्गत यदि एन्थ्रेक्नोज (श्याम व्रण) का प्रकोप दिखाई दे, तो बाविस्टिन 0.2 प्रतिशत (2 ग्राम प्रति लीटर पानी) अथवा बोर्डो मिश्रण (2:2:250) का छिड़काव एक सप्ताह के अंतराल पर दो बार करना चाहिए। चूर्णिल फफूंद की रोकथाम हेतु केराथेन 0.1 प्रतिशत या बेलेटॉन 0.1 प्रतिशत अथवा डीनोकैप 0.25 मि.ली. प्रति लीटर पानी का छिड़काव करना चाहिए।

केले में रोपाई

यह समय केले की रोपाई के लिए अत्यंत उपयुक्त होता है। रोपण हेतु लगभग तीन माह पुरानी, तलवारनुमा, स्वस्थ एवं रोगमुक्त पत्तियों वाली अधोभूस्तारियों (स्वोर्ड सकर्स) का चयन करना चाहिए, जबकि चौड़ी पत्तियों वाली अधोभूस्तारियों (वॉटर सकर्स) से बचना चाहिए, क्योंकि वे अपेक्षाकृत कमजोर होती हैं। रोपण के लिए अधोभूस्तारी का औसत वजन 1 से 1.5 किलोग्राम उपयुक्त रहता है। रोपण से पूर्व पत्तियों को अधोभूस्तारी से लगभग 25-30 सें.मी. ऊपर से काटकर उन्हें बाविस्टिन 1 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल से उपचारित करना चाहिए। रोपाई करते समय केवल अधोभूस्तारी भाग को मिट्टी में दबाकर तुरंत सिंचाई करना आवश्यक है। सूक्ष्म प्रवर्धित (टिश्यू कल्चर) जी-9 पौधों की रोपाई के लिए यह सुनिश्चित करें कि पौध की ऊँचाई लगभग 30 सें.मी., मोटाई लगभग 5 सें.मी. तथा 4-5 पूर्ण विकसित पत्तियाँ हों। भूमि उपचार हेतु ब्यूवेरिया बेसियाना 5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर को लगभग 250 क्विंटल सड़ी गोबर खाद में मिलाकर प्रयोग करना लाभकारी रहता है। यदि सूत्रकृमि (निमेटोड) की समस्या हो तो पेसिलोमाइसिस 5 कि.ग्रा. को गोबर की खाद में मिलाकर देना प्रभावी रहता है। रोपण दूरी किस्म के अनुसार निर्धारित करनी चाहिए। ग्रांड नैन के लिए 1.6 × 1.6 मीटर, ड्वार्फ कवेंडिश के लिए 1.5 × 1.5 मीटर तथा रोबस्टा के लिए 1.8 × 1.8 मीटर दूरी उपयुक्त रहती है। सघन रोपण के लिए कवेंडिश एवं रोबस्टा को 1.5 × 1.5 × 2.0 मीटर दूरी पर लगाया जा सकता है।

आवश्यकता पड़ने पर सल्फर पाउडर का प्रयोग भी प्रभावी रहता है।

इन महीनों में थ्रिप्स का प्रकोप भी देखा जाता है, जिसके नियंत्रण के लिए इमामेक्टिन बेंजोएट 5 एसजी का 0.22 ग्राम प्रति लीटर या स्पिनोसैड 45 एससी का 0.25 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करना चाहिए।

जून माह में मृदुल आसिता से बचाव हेतु मुख्य तने के समीप निकलने वाली अनावश्यक शाखाओं को हटाना चाहिए तथा ट्रेलिस से लटकती शाखाओं को सुतली से बाँधकर मिट्टी के संपर्क से दूर रखना चाहिए। रासायनिक नियंत्रण के लिए बोर्डो मिश्रण 0.5 प्रतिशत या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 3 ग्राम प्रति लीटर पानी का छिड़काव करना चाहिए। जैविक विकल्प के रूप में बैसिलस सबटिलिस 2 मि.ली. प्रति लीटर या ट्राइकोडर्मा 5 मि.ली. प्रति लीटर का वैकल्पिक छिड़काव भी प्रभावी रहता है।

तुड़ाई से 8-10 दिनों पूर्व 50-100 पीपीएम नेफ्थलीन एसिटिक अम्ल का छिड़काव करने से फलों के गिरने की समस्या कम होती है तथा उनके भंडारण जीवन में वृद्धि होती है। पक्षियों से सुरक्षा हेतु जाल लगाना आवश्यक है।

अनार

उत्तर-पश्चिमी भारत के शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों, जहाँ सिंचाई की सुविधाएँ सीमित होती हैं, वहाँ अनार में मृग बहार को प्राथमिकता दी जाती है, जबकि महाराष्ट्र जैसे सिंचित क्षेत्रों में अम्बे बहार अधिक उपयुक्त माना जाता है। मृग बहार प्रबंधन के अंतर्गत अप्रैल-मई से ही खेतों में सिंचाई बंद कर दी जाती है, जिससे पौधे विश्राम अवस्था में चले जाते हैं। सिंचाई बंद करने के लगभग 45 दिनों बाद पौधों की हल्की छंटाई की

अनार

जाती है, जिससे नए पुष्पण एवं संतुलित वृद्धि को प्रोत्साहन मिलता है। छंटाई के तुरंत बाद अनुशंसित मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग कर सिंचाई पुनः प्रारंभ करनी चाहिए।

सामान्यतः प्रत्येक पौधे को प्रति वर्ष 10-15 किलोग्राम सड़ी गोबर की खाद के साथ 250 ग्राम नाइट्रोजन, 125 ग्राम फॉस्फोरस तथा 125 ग्राम पोटाश देना चाहिए। इन उर्वरकों को पौधे के छत्रक के चारों ओर 8-10 सें.मी. गहरी खाई बनाकर डालना अधिक प्रभावी रहता है, जिससे पुष्पण एवं फलन में वृद्धि होती है।

पत्तियों को एक साथ गिराने के लिए सिंचाई बंद करने के लगभग 45 दिनों बाद इथरेल 1000 पीपीएम, प्रोफेनोफॉस 2 मि.ली. प्रति लीटर, थायोयूरिया 3 ग्राम प्रति लीटर या यूरिया फॉस्फेट 5 ग्राम प्रति लीटर के घोल का छिड़काव किया जा सकता है। यदि किसी क्षेत्र में तेलिया रोग का प्रकोप हो, तो वहाँ मृग बहार लेना उचित नहीं होता, क्योंकि इस अवस्था में रोग का प्रकोप अधिक बढ़ सकता है। ऐसी स्थिति में मई के तीसरे सप्ताह से जून के अंत तक तथा आवश्यकता अनुसार उसके बाद भी नियमित रूप से रासायनिक या जैविक रोगनाशकों का प्रयोग करना चाहिए।

जून माह से फल बेधक कीट का प्रकोप बढ़ने लगता है, जिसके नियंत्रण हेतु फलों की बैगिंग एक प्रभावी उपाय है। साथ ही एजाडिरेक्टिन (1500 पीपीएम) 3 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करना भी लाभकारी रहता है।

मई-जून की अवधि में मृदा सौरीकरण एक महत्वपूर्ण अभ्यास है, जिससे मृदा में उपस्थित हानिकारक कीट, रोगजनक फफूंद तथा खरपतवारों के बीज नष्ट हो जाते हैं। नए बागों की स्थापना के लिए मानसून से पूर्व ही रेखांकन एवं गड्ढों की खुदाई का कार्य पूर्ण कर लेना चाहिए। सामान्यतः अनार के पौधों को 4-5 मीटर की दूरी पर लगाया जाता है। पौधरोपण से लगभग एक माह पूर्व 60 × 60 × 60 सें.मी. आकार के गड्ढे खोदकर उन्हें कम से कम 15 दिनों तक खुला छोड़ देना चाहिए, ताकि सूर्य के प्रकाश से कीट एवं रोगजनक नष्ट हो सकें। इसके बाद गड्ढों की ऊपरी मिट्टी में 10-15 किलोग्राम सड़ी गोबर की खाद, 1 किलोग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट तथा 50 ग्राम क्लोरोपायरीफॉस चूर्ण मिलाकर गड्ढों को भूमि सतह से लगभग 15 सें.मी. ऊपर तक भर देना चाहिए। गड्ढे भरने के तुरंत बाद हल्की सिंचाई करना आवश्यक

पपीता

है, जिससे मिट्टी अच्छी तरह बैठ जाए और पौधों के प्रारंभिक विकास के लिए अनुकूल वातावरण तैयार हो सके।

पपीता

मई माह में पपीते के नए बगीचे की स्थापना के लिए रेखांकन के पश्चात गड्ढों को भरने का कार्य समय से पूरा कर लेना चाहिए, ताकि मानसून के साथ पौधरोपण सुचारु रूप से किया जा सके। इस समय पछेती किस्मों के तैयार फलों की समय पर तुड़ाई कर उन्हें बाजार तक पहुँचाने की उचित व्यवस्था करना भी आवश्यक होता है। नर्सरी में तैयार छोटे पौधों को तेज गर्मी एवं लू से बचाने के लिए विशेष प्रबंधन करना चाहिए। इसके लिए नर्सरी पर छप्पर या छायादार आवरण लगाना लाभकारी रहता है। साथ ही नर्सरी पौधों के लिए प्रति सप्ताह नियमित सिंचाई की व्यवस्था करना आवश्यक है, जिससे पौधों की वृद्धि प्रभावित न हो। बगीचे में लगे पौधों के चारों ओर तीन ओर से घास या पुआल से आच्छादन करने से पौधों को तेज धूप से सुरक्षा मिलती है तथा मृदा की नमी भी संरक्षित रहती है। इससे पौधों की स्थापना और प्रारंभिक वृद्धि बेहतर होती है। जून माह में नर्सरी के पौधों को सावधानीपूर्वक निकालकर मुख्य खेत में रोपित कर देना चाहिए तथा रोपण के तुरंत बाद सिंचाई करना अत्यंत आवश्यक होता है। नए लगाए गए पौधों को पुराने बगीचों की अपेक्षा अधिक सिंचाई की आवश्यकता होती है, इसलिए प्रारंभिक अवस्था में नियमित

अंतराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए, जिससे पौधों की जड़ें अच्छी तरह स्थापित हो सकें और उनकी वृद्धि सुचारु बनी रहे।

नीबूवर्गीय फल

मई माह में नीबूवर्गीय फलों के नए बागों की स्थापना के लिए अग्रिम तैयारी अत्यंत आवश्यक होती है। इस हेतु बाग का समुचित रेखांकन कर निर्धारित दूरी पर गड्ढों की खुदाई समय से कर लेनी चाहिए, ताकि मानसून के साथ पौधरोपण सुगमता से किया जा सके। पौधशाला में तैयार पौधों की नियमित देखभाल जैसे सिंचाई, गुड़ाई एवं निराई निरंतर करते रहना चाहिए, जिससे उनकी स्वस्थ वृद्धि सुनिश्चित हो सके।

स्थापित बागों में इस अवधि में लगभग 15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करना आवश्यक होता है, क्योंकि बढ़ते तापमान एवं शुष्क वातावरण के कारण मृदा में नमी की कमी हो जाती है, जिससे फल विकास प्रभावित होता है तथा फल झड़ने की समस्या बढ़ जाती है। फल झड़ने की समस्या को नियंत्रित करने के लिए 2,4-डी का 10 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी की दर से छिड़काव करना लाभकारी रहता है।

जून माह के अंत में पूर्व में खोदे गए गड्ढों को गोबर की खाद, उर्वरक तथा मिट्टी को समान अनुपात में मिलाकर भर देना चाहिए तथा भरने के तुरंत बाद हल्की सिंचाई अवश्य करनी चाहिए, ताकि मिट्टी अच्छी तरह बैठ जाए। साथ ही बाग में जल निकास की उचित व्यवस्था हेतु नालियों की सफाई सुनिश्चित करना भी आवश्यक है।

फलदार पौधों में इस समय नाइट्रोजन एवं पोटाश की द्वितीय मात्रा का प्रयोग करना लाभदायक रहता है। उदाहरण के रूप में, नीबू के एक वर्ष पुराने पौधों में 25 ग्राम नाइट्रोजन तथा 25 ग्राम पोटाश का प्रयोग किया जाता है, जिसे पौधों की आयु बढ़ने के साथ क्रमशः बढ़ाकर 10 वर्ष या उससे अधिक आयु के पौधों में 250 ग्राम नाइट्रोजन तथा 250 ग्राम पोटाश तक किया जाता है। इन उर्वरकों का प्रयोग इस माह अथवा फल लगने के लगभग दो माह बाद करना उपयुक्त रहता है।

रसदार सिट्रस

सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी, विशेषकर जस्ते की कमी, इस समय सामान्यतः देखने को मिलती है, जिसके कारण पत्तियाँ पीली एवं छोटी हो जाती हैं। इसके नियंत्रण हेतु 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट का छिड़काव करना चाहिए। आवश्यकता अनुसार अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों का भी संतुलित उपयोग करना लाभकारी रहता है।

आंवला

आंवला के नए बागों की स्थापना के लिए जून माह में गड्ढों की खुदाई का कार्य कर लेना चाहिए। सामान्यतः गड्ढों का आकार 1 × 1 × 1 मीटर रखा जाता है तथा पौधों के बीच दूरी किस्म एवं मृदा की उर्वरता के अनुसार 8-10 मीटर निर्धारित की जाती है। गड्ढों को खोदने के लगभग 15 दिनों बाद उनमें लगभग 10 किलोग्राम सड़ी हुई गोबर की खाद, 1 किलोग्राम नीम खली, 50 ग्राम क्लोरोपाइरीफॉस पाडडर तथा ऊपरी उपजाऊ मिट्टी मिलाकर भर देना चाहिए, जिससे पौधों की प्रारंभिक वृद्धि के लिए अनुकूल वातावरण तैयार हो सके।

आंवला में स्वयं-बंध्यता पाई जाती है, इसलिए बेहतर परागण एवं फलन के लिए कम से कम दो अलग-अलग किस्मों का रोपण करना आवश्यक होता है। यह एक पर्णपाती वृक्ष है, जो फल बनने के बाद गर्मियों के मौसम में सुषुप्तावस्था में चला जाता है और मानसून के आगमन तक उसी अवस्था में बना रहता है। इस कारण अन्य फल फसलों की तुलना में गर्मियों के दौरान इसे अपेक्षाकृत कम सिंचाई की आवश्यकता होती है, फिर भी 10-15 दिनों के अंतराल पर हल्की सिंचाई करना लाभकारी रहता है।

ड्रिप सिंचाई पद्धति अपनाने से मृदा में नमी का संरक्षण होता है तथा फलों के विकास और कुल उपज में वृद्धि होती है। इसके साथ ही खरपतवारों की वृद्धि भी कम होती है।

मई-जून की गर्मियों में मृदा में नमी संरक्षण के लिए स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्रियों, जैसे धान का भूसा, स्थानीय घास, केले के पत्ते अथवा गन्ने के अपशिष्ट को पलवार के रूप में लगभग 20 किलोग्राम प्रति वृक्ष की दर से थालों में बिछाना चाहिए। इस पलवार को 10-15 सें.मी. मोटाई में समान रूप से फैलाना चाहिए। यदि पॉलीथीन पलवार का उपयोग करना हो, तो 100 माइक्रोन मोटी फिल्म का प्रयोग उपयुक्त रहता है।

देश के उत्तरी एवं पश्चिमी भागों में बेर की कटाई-छंटाई के लिए मई-जून का समय सबसे उपयुक्त माना जाता है, क्योंकि इस अवधि में पौधों की अधिकांश पत्तियाँ झड़ चुकी होती हैं और वृक्ष सुषुप्तावस्था में रहते हैं। छोटे पौधों में लगभग 60-90 सेंटीमीटर की ऊँचाई तक तने पर निकली शाखाओं को काटकर हटा देना चाहिए तथा पौधे को लकड़ी या बांस के सहारे सीधा रखना चाहिए।

बड़े वृक्षों में चटकी, टूटी तथा जमीन को छूने वाली शाखाओं को हटाना आवश्यक

लीची

मई में पौधों को 15 दिनों के अंतराल पर पानी देते रहना चाहिए ताकि फलों की बढ़ोतरी नियमित बनी रहे। लीची के बाग का रेखांकन भी मई में ही कर लेना चाहिए, जैसे अन्य फलों के लिए करते हैं। रेखांकन के बाद 3×3×3 फुट के गड्ढे खोदें और एक महीने बाद उन्हें गोबर की खाद, रासायनिक खाद और मिट्टी की बराबर मात्रा से भर दें। मई में कुछ किस्मों के फल पकने लगते हैं, उन्हें बर्रों से बचाना चाहिए। तैयार फलों को सुबह या शाम तोड़कर भेजने की समुचित व्यवस्था आवश्यक है। लीची में फल पकते समय फटने की समस्या बहुत होती है। पौधों को नियमित पानी देना चाहिए, वरना मई-जून में एकाएक वर्षा या सिंचाई से फल ज्यादा फट सकते हैं। अगर फल फिर भी फटें तो जिब्रेलिक अम्ल (4 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी) का छिड़काव लाभ देता है। जिंक सल्फेट के 1.5 प्रतिशत घोल का छिड़काव फल की छोटी अवस्था से तुड़ाई तक 15 दिन के अंतर पर करने से फटने की समस्या काफी कम हो जाती है। माईट के प्रकोप को रोकने के लिए डाइमिथोएट (100 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी) का छिड़काव फायदेमंद होता है। लीची में गूटी बांधने का काम जून के दूसरे पखवाड़े में करें और मिलीबग को रोकने के लिए थालों में 2 प्रतिशत कीटनाशी पाउडर डालकर गुड़ाई कर दें।

फालसा

इस द्विमाही खेत की गहरी जुताई करनी चाहिए ताकि कीटों के प्यूपा और खरपतवार के प्रवर्धक नष्ट हो जाएँ। जून माह में यदि बाग के आस-पास क्लेरोडेंड्रोन इनफ्लोर्चुनेटम नामक खरपतवार उगी हो, तो उसे नष्ट करना आवश्यक है क्योंकि यह पौधा मिली बग कीट को पनपने के लिए आश्रय प्रदान करता है। फालसे के फलों की उचित बढ़वार के लिए 15 दिनों के अंतराल पर नियमित सिंचाई करनी चाहिए। फालसे में फलों का पकना अप्रैल के अंतिम सप्ताह से शुरू होकर जून के प्रथम सप्ताह तक जारी रहता है। इसके फल अत्यंत नाजुक होते हैं, इसलिए तुड़ाई सुबह या शाम के समय करनी चाहिए। फलों के समान रूप से पकने के लिए प्रारंभिक अवस्था में 1000 पीपीएम एथरेल का छिड़काव करना चाहिए। पके हुए फलों का भंडारण सामान्य तापमान पर एक या दो दिनों से अधिक नहीं किया जा सकता है, इसलिए तुड़ाई के तुरंत बाद इनकी बिक्री करना अत्यंत आवश्यक है।

फालसा

होता है। साथ ही आपस में उलझी हुई शाखाओं की छंटाई भी करनी चाहिए। यह कार्य मई माह तक पूरा कर लेना उपयुक्त रहता है। कटाई-छंटाई के दौरान पिछले वर्ष की शाखाओं का लगभग 50 प्रतिशत भाग काट देना चाहिए। तृतीयक शाखाओं को पूरी तरह हटाने तथा द्वितीयक शाखाओं की लगभग 15-20 कलियाँ छोड़कर छंटाई करने से मजबूत एवं स्वस्थ शाखाओं का विकास होता है।

कटे हुए स्थानों पर रोगों के प्रकोप से बचाव के लिए फफूंदीनाशी, जैसे नीला थोथा या ब्लाइटॉक्स-50 का लेप लगाना चाहिए। छंटाई के लिए तेज धार वाले औजारों का उपयोग करना आवश्यक है, जिससे शाखाएँ क्षतिग्रस्त न हों। जिन वृक्षों में छंटाई का कार्य शेष रह गया हो, उसे जून के प्रथम सप्ताह

ग्रीष्मकाल में सुषुप्त अवस्था में आंवला

तक अवश्य पूरा कर लेना चाहिए। छंटाई के बाद कटी हुई लकड़ियों एवं शाखाओं को तुरंत बाग से बाहर निकाल देना चाहिए।

जून माह अत्यधिक गर्म रहता है, इसलिए जब तक पौधों में नई कोंपलें न निकलें, तब तक सिंचाई से बचना चाहिए। गर्मी के मौसम में एक-दो बार पेड़ों के नीचे जुताई करने से हानिकारक कीटों के अंडे एवं प्यूपा नष्ट हो जाते हैं। पौधों के मुख्य तने के चारों ओर लगभग 60 सेंटीमीटर की दूरी पर घेरा बनाकर उसे सिंचाई नाली से जोड़ना भी लाभकारी रहता है।

पोषण प्रबंधन के अंतर्गत एक वर्ष पुराने पौधे के लिए लगभग 5 किलोग्राम गोबर या कम्पोस्ट खाद, 50 ग्राम नाइट्रोजन, 50 ग्राम फॉस्फोरस तथा 25 ग्राम पोटाश की आवश्यकता होती है। पौधों की आयु बढ़ने के साथ यह मात्रा क्रमशः बढ़ाते हुए आठ वर्ष या उससे अधिक आयु के पौधों के लिए लगभग 40 किलोग्राम गोबर की खाद, 400 ग्राम नाइट्रोजन, 400 ग्राम फॉस्फोरस तथा 200 ग्राम पोटाश प्रति पौधा देना चाहिए।

खजूर

खजूर के नए बागों की स्थापना के लिए जून माह में गड्ढों की खुदाई कर लेना उपयुक्त रहता है। सामान्यतः पौधों के बीच दूरी किस्म एवं मृदा की उर्वरता के अनुसार 6-8 मीटर रखी जाती है। गड्ढों को मानसून से पूर्व तैयार कर लेने से पौधरोपण सुगमता से किया जा सकता है।

फल सेट होने के बाद मई माह में गुच्छों के मुख्य डंठलों को सावधानीपूर्वक नीचे की ओर मोड़ देना चाहिए, ताकि वे पत्तियों की मध्य शिरा को छुए बिना नीचे की ओर लटक सकें। इससे बढ़ते फलों के वजन से डंठल टूटने की आशंका कम हो जाती है तथा पत्तियों से रगड़ के कारण होने वाली क्षति से भी बचाव होता है।

छंटाई उपरांत बेर के बाग

मई के अंतिम सप्ताह से जून के प्रथम सप्ताह तक फलों का विरलीकरण कार्य पूरा कर लेना चाहिए। यह कार्य प्रत्येक गुच्छे में फलों की संख्या कम करके अथवा कुछ गुच्छों को हटाकर किया जाता है। सामान्यत: पौधे की आयु एवं किस्म के अनुसार प्रति पौधा 5 से 10 गुच्छे अथवा लगभग 1300 से 1600 फल बनाए रखना उपयुक्त रहता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक गुच्छे के केंद्र से लगभग एक-तिहाई फलों की लड़ियों को काटकर अलग कर देना चाहिए, जिससे फल जल्दी पकते हैं और उनकी गुणवत्ता में सुधार होता है।

फलों की छंटाई अथवा विरलीकरण की तीव्रता किस्म के अनुसार भिन्न होती है। खद्रावी किस्म में लगभग 40-50 प्रतिशत, जैदी एवं बरही में 50-60 प्रतिशत तथा हलावी किस्म में लगभग 50-55 प्रतिशत विरलीकरण करना उपयुक्त माना जाता है।

मई-जून माह के दौरान बागों में नियमित सिंचाई बनाए रखना आवश्यक होता है, जिससे फलों का विकास सुचारु रूप से हो सके। जून माह के अंत तक फल सामान्यत: डोका अवस्था में पहुँचने लगते हैं। इस अवस्था में संभावित वर्षा से बचाव के लिए फलों के गुच्छों को जैव निम्नीकरणीय प्लास्टिक की चादरों से ढक देना चाहिए। पक्षियों से सुरक्षा हेतु जालियों का उपयोग करना भी लाभकारी रहता है।

जून के तीसरे एवं चौथे सप्ताह में अगेती किस्मों जैसे नागल, मस्कट, तायर, सायर, हलावी एवं खूनैजी में तुड़ाई प्रारंभ की जा सकती है, क्योंकि इस समय इनके अधिकांश फल डोका अवस्था में पहुँच जाते हैं। इन फलों का उपयोग ताजे रूप में करने के साथ-साथ प्रसंस्करण के माध्यम से छुहारा बनाने में भी किया जा सकता है।

खजूर में फलन

बेल

मई-जून की अवधि में बेल के फल सामान्यत: तुड़ाई के लिए तैयार हो जाते हैं। फलों की परिपक्वता की पहचान उनके बाहरी रंग के गहरे हरे से पीला-हरे रंग में परिवर्तन से की जा सकती है। इस समय वृक्षों की अधिकांश पत्तियाँ गिर चुकी होती हैं और वृक्षों पर मुख्यत: फल ही दिखाई देते हैं।

तुड़ाई के दौरान पेड़ों को हिलाकर फल नहीं तोड़ना चाहिए, क्योंकि इससे फल जमीन पर गिरकर फट सकते हैं और उनकी गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है। अत: फलों की तुड़ाई सावधानीपूर्वक एक-एक करके हाथ से करनी चाहिए।

तुड़ाई के बाद फलों में डंठल सड़न रोग की संभावना बनी रहती है, इसलिए फलों को लगभग 2 सें.मी. लंबे डंठल सहित तोड़ना चाहिए। इससे भंडारण एवं परिवहन के दौरान फलों की गुणवत्ता बनी रहती है और नुकसान की आशंका कम हो जाती है।

गुणकारी बेल

सेब

गर्मी के तीव्र प्रभाव से फलदार पौधों की सुरक्षा हेतु तनों की छाल को सुरक्षित रखना आवश्यक होता है। इसके लिए तनों को घास अथवा अन्य उपयुक्त सामग्री से बाँध देना लाभकारी रहता है, जिससे सूर्य की तीव्र किरणों से होने वाले नुकसान से बचाव किया जा सकता है।

इस मौसम में पौधों में अपस्थानिक शाखाएँ अधिक निकलती हैं, जो अनावश्यक रूप से पोषक तत्वों का उपभोग करती हैं। अत: इन्हें समय रहते हटाना चाहिए, जिससे मुख्य पौधे की वृद्धि एवं फलन प्रभावित न हो। उच्च तापमान के कारण फलों का गिरना एक प्रमुख समस्या के रूप में सामने आता है, जिसे नियंत्रित करने के लिए फल लगने के लगभग 4-5 सप्ताह बाद नेफ्थलीन एसिटिक अम्ल 10 पीपीएम का छिड़काव करना प्रभावी रहता है। साथ ही फलों से लदी शाखाओं को

टूटने से बचाने के लिए बांस अथवा बल्ली का सहारा देना आवश्यक होता है।

रोग प्रबंधन के अंतर्गत यदि चूर्णिल फफूंद का प्रकोप दिखाई दे, तो केराथेन 0.03 प्रतिशत (300 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी) का छिड़काव करना चाहिए। इसके अतिरिक्त चूना एवं गंधक को 1:40 अनुपात में मिलाकर प्रयोग करना भी रोग एवं कुछ कीटों के नियंत्रण में सहायक होता है।

सैंजोस स्केल कीट के प्रकोप की स्थिति में बुप्रोफेजीन जैसे कीट वृद्धि नियामकों का छिड़काव करना चाहिए, जो विशेष रूप से निम्फ अवस्था को प्रभावित करता है। जैविक नियंत्रण के अंतर्गत काइलोकोरस बाइजुगस के 30-50 वयस्क प्रति ग्रसित वृक्ष छोड़ना भी प्रभावी उपाय माना जाता है।

सूक्ष्म पोषक तत्वों की पूर्ति भी इस समय अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। जिंक की कमी होने पर 0.1 प्रतिशत जिंक सल्फेट का छिड़काव करना चाहिए, जबकि बोरॉन की कमी होने पर 0.5 प्रतिशत सुहागा का घोल उपयोगी रहता है। इसके अतिरिक्त पौधों की आवश्यकता अनुसार सिंचाई सुनिश्चित करनी चाहिए तथा नमी संरक्षण के लिए पलवार का प्रयोग करना लाभकारी रहता है, जिससे मृदा की नमी बनी रहती है, खरपतवार नियंत्रण होता है और पौधों की समुचित वृद्धि सुनिश्चित होती है।

आलूबुखारा

ग्रीष्म ऋतु में आलूबुखारा के बागों में समुचित प्रबंधन अत्यंत आवश्यक होता है, क्योंकि इस अवधि में खरपतवारों का प्रकोप तेजी से बढ़ता है। अतः समय-समय पर निराई-गुड़ाई कर खरपतवारों का नियंत्रण करना चाहिए, जिससे पोषक तत्वों एवं नमी के लिए होने वाली अनावश्यक प्रतिस्पर्धा कम हो सके।

मई-जून के दौरान पौधों की सक्रिय वृद्धि एवं फल विकास के लिए नियमित सिंचाई आवश्यक होती है। इसलिए लगभग एक सप्ताह के अंतराल पर सिंचाई करना लाभकारी रहता है। जिन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा सीमित हो, वहाँ पेड़ों के चारों ओर पलवार बिछाना अत्यंत उपयोगी होता है, जिससे मृदा की नमी संरक्षित रहती है, तापमान संतुलित बना रहता है तथा खरपतवारों की वृद्धि नियंत्रित होती है। इससे फलों की गुणवत्ता में भी सुधार होता है।

गर्मी के दुष्प्रभाव से पेड़ों की सुरक्षा के लिए मुख्य तने पर कॉपर सल्फेट के घोल अथवा बोर्डो लेप का उपयोग करना चाहिए,

पौष्टिक सेब

जिससे छाल को सनबर्न से बचाया जा सके। ब्यूटी, सांता रोजा एवं मैथिली जैसी अधिक फल देने वाली किस्मों में फल भार अधिक होने के कारण शाखाओं के टूटने की आशंका रहती है, इसलिए उन्हें बांस अथवा मजबूत लकड़ी का सहारा देना आवश्यक होता है।

विशेषकर जापानी आलूबुखारा की किस्मों में अधिक फल लगने के कारण फलों का आकार छोटा रह सकता है। ऐसी स्थिति में फल छंटाई करना आवश्यक होता है। यह कार्य हाथ से अथवा नेफ्थालीन एसिटिक अम्ल 50 पीपीएम के छिड़काव द्वारा किया जा सकता है।

पोषण प्रबंधन के अंतर्गत नाइट्रोजन की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। इसके लिए 0.5 प्रतिशत यूरिया घोल का पर्णीय छिड़काव फूलों की पंखुड़ियाँ झड़ने के बाद से लेकर फलों के पकने से लगभग दो सप्ताह पूर्व तक किया जा सकता है। साथ ही सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी, विशेषकर जिंक एवं लौह की कमी को दूर करने हेतु 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट तथा फेरस सल्फेट का छिड़काव लाभकारी रहता है।

रसीला अलूचा

फलों को पक्षियों से बचाने के लिए जाल अथवा अन्य उपयुक्त सुरक्षा उपाय अपनाने चाहिए। यदि पत्तियाँ खाने वाले कीटों का प्रकोप दिखाई दे, तो इंडोक्साकार्ब 0.07 प्रतिशत घोल का छिड़काव प्रभावी नियंत्रण प्रदान करता है।

रसीला अलूचा

आने वाली द्विमाही, जो मानसून की पहली फुहारों के साथ दस्तक देती है, बागवानी के दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण एवं अवसरों से भरपूर होती है। यह वह समय है जब बागों में जल निकास की समुचित व्यवस्था, सदाबहार फलों के नए बागों की स्थापना एवं देखभाल, कीट एवं रोगों से प्रभावी संरक्षण तथा खरपतवार नियंत्रण जैसे कार्यों को प्राथमिकता देनी आवश्यक होती है। इसके साथ ही आम, खजूर, नीबू, अंगूर और सेब जैसे फलों की समय पर तुड़ाई, श्रेणीकरण तथा बाजार तक उनकी सुरक्षित पहुँच सुनिश्चित करना भी उतना ही महत्वपूर्ण रहता है।

इन सभी महत्वपूर्ण विषयों पर हम अगले अंक में विस्तार से चर्चा करेंगे और आपके लिए कुछ सरल, व्यावहारिक एवं उपयोगी उपाय लेकर आएँगे, ताकि आप अपने बाग की उत्पादकता एवं फलों की गुणवत्ता को और अधिक बेहतर बना सकें। इसलिए अपनी प्रिय पत्रिका **'फल फूल'** का अगला अंक अभी से सुरक्षित कर लें। तब तक अपने बागों की नियमित देखभाल करते रहें, क्योंकि यदि आपके बाग सुरक्षित हैं, तो आपकी समृद्धि भी सुनिश्चित है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
के चुनिंदा हिन्दी प्रकाशन

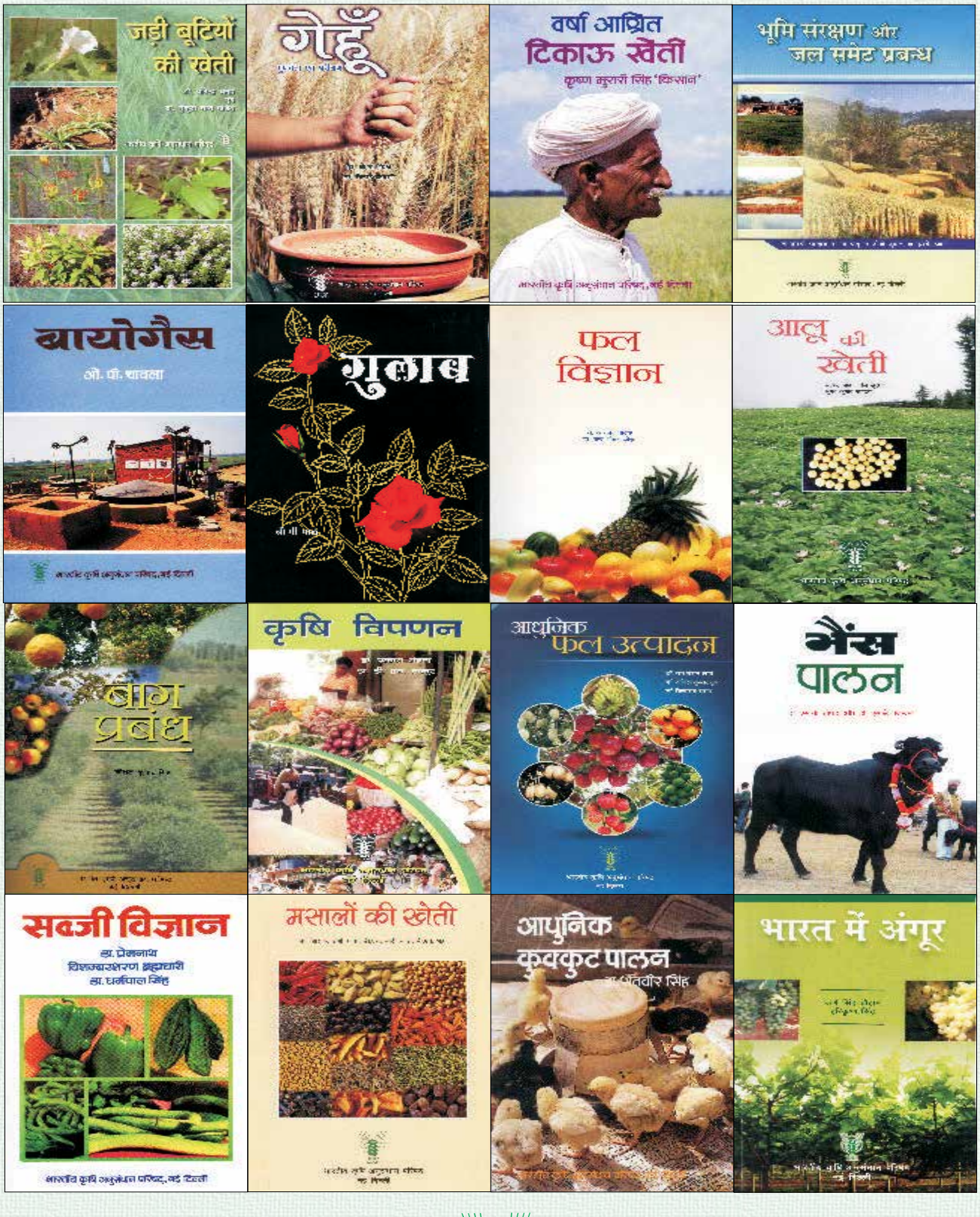

संपर्क सूत्र: प्रभारी, व्यवसाय एकक

कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

कृषि अनुसंधान भवन, पूसा, नई दिल्ली -110 012

दूरभाष: 011-25843657, E-mail: bmicar.org.in

प्लास्टिक मल्च की गर्मी से नन्ही पौध की आसान सुरक्षा

गर्मी के मौसम में सब्जी फसलों की खेती के दौरान प्लास्टिक मल्चिंग तकनीक का उपयोग व्यापक रूप से किया जाता है, क्योंकि यह नमी संरक्षण, खरपतवार नियंत्रण और उत्पादन वृद्धि में सहायक होती है। हालांकि, उच्च तापमान की स्थिति में प्लास्टिक मल्चिंग शीट के कारण मिट्टी की सतह के पास तापमान अत्यधिक बढ़ जाता है, जिससे नवरोपित नन्हे पौधों के झुलसने और सूखने की आशंका रहती है। विशेषकर मिर्च जैसी संवेदनशील सब्जी फसलों में यह समस्या अधिक देखी जाती है। इस चुनौती का समाधान कर्नाटक के नवप्रवर्तक श्री बालगोण्ड मस्तीहोली ने एक सरल, सस्ता और व्यावहारिक उपाय विकसित करके प्रस्तुत किया है, जो किसानों के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रहा है।

गर्मी के मौसम में प्लास्टिक मल्चिंग शीट का उपयोग सब्जी उत्पादन में लाभकारी होता है, लेकिन अधिक तापमान की स्थिति में यह नन्ही पौधों के लिए हानिकारक भी बन सकती है। विशेष रूप से मिर्च की रोपाई के बाद मल्चिंग शीट से निकलने वाली अतिरिक्त गर्मी के कारण पौध झुलसकर सिकुड़ जाती है या सूख जाती है। इससे खेत में पौधों की संख्या घटती है और बार-बार गैप फिलिंग करनी पड़ती है, जिससे अतिरिक्त श्रम और लागत बढ़ जाती है।

इस समस्या के समाधान के लिए श्री बालगोण्ड मस्तीहोली ने एक अत्यंत सरल और व्यावहारिक तकनीक विकसित की। इन्होंने पेपर मिल से प्राप्त बेकार ड्रॉइंग शीट्स का उपयोग करते हुए एक सुरक्षात्मक आवरण तैयार किया। इन शीट्स को आयताकार आकार में लगभग 2.5 से 3 इंच ऊँचाई में काटा जाता है और फिर इन्हें पौध के तने के चारों ओर लपेटकर स्टेपल कर दिया जाता है। यह आवरण प्लास्टिक मल्चिंग शीट से निकलने वाली गर्मी को सीधे पौध के तने तक पहुंचने से रोकता है और पौधों को प्रारंभिक अवस्था में सुरक्षित रखता है।

यह तकनीक अत्यंत कम लागत वाली, सरल और स्थानीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों पर आधारित है। बेकार ड्रॉइंग शीट्स का उपयोग करके पौधों के चारों ओर एक सुरक्षात्मक परत तैयार की जाती है, जो गर्मी से बचाव प्रदान करती है। इस तकनीक को अपनाने के लिए किसी विशेष प्रशिक्षण या महंगे उपकरण की आवश्यकता नहीं होती। किसान स्वयं या खेत में कार्यरत श्रमिकों की सहायता से इसे आसानी से लागू कर सकते हैं।

लाभ

- नन्ही पौध के झुलसने व मुरझाने की समस्या में भारी कमी
- प्रारंभिक अवस्था में पौधों की मृत्यु दर घटने से पौध संख्या सुरक्षित रहती है
- बार-बार गैप फिलिंग की आवश्यकता नहीं पड़ती
- पौध एवं श्रम लागत में कमी से उत्पादन लागत घटती है
- पौधों की बेहतर स्थापना से आगे की वृद्धि अधिक स्वस्थ व संतुलित होती है
- फसल की एकरूपता, गुणवत्ता और उत्पादन की निरंतरता में सुधार

संभावनाएं

यह नवाचार विशेष रूप से उन किसानों के लिए अत्यंत उपयोगी है, जो गर्मी के मौसम में प्लास्टिक मल्चिंग तकनीक के साथ सब्जी उत्पादन करते हैं। मिर्च के अतिरिक्त अन्य संवेदनशील सब्जी फसलों में भी इस तकनीक को सफलतापूर्वक अपनाया जा सकता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसे कम लागत और कम श्रम में बड़े क्षेत्र में भी लागू किया जा सकता है।

उपलब्ध जानकारी के अनुसार, एक दिन में लगभग एक एकड़ क्षेत्र में इस तकनीक को लागू करने के लिए केवल दो से तीन महिला श्रमिकों की आवश्यकता होती है। इससे यह तकनीक छोटे और सीमांत किसानों के लिए भी व्यावहारिक बन जाती है। आसपास के क्षेत्रों के कई किसानों द्वारा इस नवाचार को अपनाया जा रहा है, जो इसकी उपयोगिता और प्रभावशीलता को दर्शाता है।

सरल सुरक्षा का प्रभावी उपाय

मल्च की तपिश से बचाव करता ड्राइंग शीट आवरण

वैज्ञानिक पुष्टिकरण

यह नवाचार किसानों के अनुभव आधारित व्यावहारिक समाधान का उत्कृष्ट उदाहरण है। वर्तमान में इसके लिए किसी अतिरिक्त वैज्ञानिक पुष्टिकरण की आवश्यकता नहीं बताई गई है, क्योंकि इसका प्रभाव खेत स्तर पर स्पष्ट रूप से देखा जा रहा है। फिर भी, भविष्य में कृषि वैज्ञानिक संस्थानों द्वारा इसके व्यापक परीक्षण से इसे और अधिक क्षेत्रों में लोकप्रिय बनाया जा सकता है।

यह नवाचार "अपशिष्ट से सम्पदा" की अवधारणा का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। स्थानीय स्तर पर उपलब्ध बेकार ड्रॉइंग शीट्स का उपयोग करके एक उपयोगी कृषि समाधान विकसित किया गया है। समान कृषि पारितंत्र वाले क्षेत्रों में, विशेषकर गर्मी के मौसम में मिर्च की खेती करने वाले किसानों के लिए यह तकनीक अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकती है। सरलता, कम लागत और उच्च प्रभावशीलता के कारण यह नवाचार किसानों के बीच तेजी से अपनाया जाने की क्षमता रखता है।

(स्रोत: विकसित कृषि संकल्प अभियान संकलन)

ISSN 0971-2984 पंजी. सं. (क्यू)-437

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की लोकप्रिय मासिक हिंदी पत्रिका

खेती

- निरंतर 79 वर्षों से प्रकाशित आपकी अपनी लोकप्रिय हिंदी मासिक पत्रिका **खेती** में खेती-बाड़ी के आधुनिक तौर-तरीकों, पशुपालन की उन्नत विधियों, कृषि वानिकी, औषधीय पौधों की खेती तथा प्रगतिशील किसानों की सफलता गाथाओं से जुड़े अनुभवी कृषि वैज्ञानिकों के लेखों को अत्यंत सरल भाषा में प्रस्तुत किया जाता है। इस जानकारी का लाभ किसान भाई अपनी कृषि आय बढ़ाने के लिए उठा सकते हैं।
- संपूर्ण रंगीन पृष्ठों से सुसज्जित इस प्रतिष्ठित पत्रिका में **'अगले माह के कृषि कार्यकलाप'** तथा 'कृषि खबरें, देश विदेश की' जैसे अत्यंत उपयोगी नियमित स्तंभ भी हैं जो रोचक होने के साथ नई जानकारियां भी प्रदान करते हैं। यही नहीं विभिन्न किसानोपयोगी विषयों पर पत्रिका के विशेषांकों का भी समय-समय पर प्रकाशन किया जाता है।

पत्रिका मूल्य:

एक प्रति : 50 रुपये, वार्षिक सदस्यता शुल्क : 500 रुपये

संपर्क सूत्र:

प्रभारी, व्यवसाय एकक

कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

कृषि अनुसंधान भवन-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012

दूरभाष : 011-25843657, ईमेल : businessuniticar@gmail.com

डा. अनुराधा अग्रवाल, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स विबा प्रेस प्रा. लि., सी-66/3, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेस-II, नई दिल्ली 110 020 से मुद्रित। संपादक: सुनीता अरोड़ा